

— देवाधिदेव —

अरिहंत-भक्ति



संगोपक

धुनिश्री भद्रगुप्तविजयजी

★

सम्रह्वर्ता

शंकरलाल मुणोत

★



: विषयानुक्रमणिका ::



	पृष्ठ
१ देवाधिदेव अरिहृत-भक्ति का महत्त्व	१
२ द्रव्यस्त्व	४
३ द्रव्य पूजा के प्रकार	५
४ पूजन विधि	६
५ नवांग पूजा	६
६ अन्नपूजा	१०
७ भावपूजा	१३
८ २४ सुरय द्वार	१५
९ दशत्रिक	१५
१० पाच अभिगम	१७
११ चैत्य-वदन विधि	२५
१२ चैत्य सम्बन्धी मध्यम चालीस आशातना	३४
१३ गुरु-वदनविधि	३६
१४ वदन के ३२ दोष	३८
१५ गुरु प्रत्ये ३३ आशातना	४०
१६ द्रवद्रव्यादि की व्यवस्था	४३

प्रस्तावना

शास्त्रकारों ने धर्मरूपी प्रासाद के ऊपर आरोहण करने को प्रथम भूमिका रूप चार सीढ़िया घतलाई हैं। उसमें सब से प्रथम सीढ़ी देवगुरु का पूजन, दूसरी सदाचार, तीसरी तप और चौथा सुकृत्यद्वेष मोक्ष के प्रति अप्रीति का अभाव घतलाया है। मुक्ति का अद्वितीय कारण भूत सम्यग्दर्शन दशविरति और सर्वविरति आदि धर्म की प्राप्ति के निकट जाने वाले तरीकों में इन चारों की शास्त्र में गणना की गई है। उसमें सब से प्रथम देवगुरु पूजन है। गुरु तरीये माता, पिता, बलाचार्य बड़े, वृद्ध, और धर्मशास्त्रों का उपदेश देने वालों को गिना है। देव १८ दोषों से रहित होत है। श्री हेमचन्द्राचार्य ने अभिधान चिंतामणि कोष में घतलाया है।

अन्तरायान्तराय-रीर्य-मोगोपमोगगा।

हासो रत्परती भीतिर्जुगुप्सा शोक एव च ॥१॥

कामो मिथ्यान्वमज्ञान, निद्रा चविरतिस्तथा।

रागो द्वेषश्च नो दोषास्तेषामष्टादशाप्यमी ॥२॥

१ दानान्तराय, २ लाभान्तराय, ३ धीर्यान्तराय, ४ भोगान्तराय, ५ उपभोगान्तराय, ६ हास्य, ७ रति, ८ अरति, ९ भय, १० जुगुप्सा, ११ शोक, १२ काम, १३ मिथ्यात्व, १४ अज्ञान, १५ निद्रा, १६ अविरति, १७ राग, १८ द्वेष। यह १८ दोष श्री अरिहन्त देव के नहीं होते हैं। अरिहन्त देव धारह गुणों से युक्त होते हैं। (१) थशोकवृक्ष (२) मस्तक के ऊपर तीन छत्र (३) मस्ते के पीछे भामण्डल रहता है (४) दोनों तरफ चँवर झुलाते हैं (५) पुष्पों की वृष्टि देव करते हैं (६) दिव्य ध्वनि (७) दुःखभि देव घजाते हैं (८) स्वर्ण के सिंहासन पर विराजते हैं (९) वे अपायापगम नामक

अतिशय से युक्त होते हैं अर्थात् षड् २ विपरण करते हैं यह अनिष्ट अनाष्टि, रोग, महामारी आदि अपायों (अनिष्टों) का नाश हो जाना है। (१०) वे ज्ञानातिशय वाले होते हैं। अतः समस्त विद्य का सम्पूर्ण स्वरूप जानते हैं (११) वे पूनातिशयवाने होते हैं अतः बलदेव यासुदेव, चक्रवर्ती इत्यादिक भी इनकी पूना करते हैं (१२) वे वचनातिशयवाले होते हैं अतः उनके वचन का अभिप्राय देव मनुष्य और पशु भी समझ जाते हैं। उन देव और गुरु की पूना से आत्मा के साथ लगे हुए सहज कर्ममल न्यून होते हैं और इस कर्म मल के न्यून होने से आत्मा की सहज अनादि सिद्ध योग्यता उत्तमता का आविर्भाव होता है, उत्तमता प्रगट होने से सदाचार और तप का सामर्थ्य प्रगट होता है तथा सदाचार और तप के बल से मुक्ति, मुक्ति के साधनों और मुक्ति के साधक महापुरुषों के प्रति मासूर्यनारा होता है इसके नाश होने से मुक्ति की और अगु राग प्रगट होता है और यह अनुराग अनुक्रम से सर्व कल्याण का आकर्षण का अवश्य कारण बनता है। देव और गुरु का पूजन इस रीति से उत्तरोत्तर कल्याणप्राप्ति का परम अंग बनता है। इसका मुख्य कारण यह है कि इस पूजन की पाश्चभूमिका में गुणवद्गुमान का भाव होता है और गुणवद्गुमान का भाव चित्त का अति विशुद्ध आशय होने से कर्म निररा का अमोघ साधन बनता है। अनादि भगवत्कर्म में परिभ्रमण करते सर्व आत्मा प्रथम से शुद्ध नहीं होती किन्तु कर्ममल से व्याप्त होती हैं। इस दशा में सर्व आत्माओं ने कभी भी नहीं देखी हुई व अनुभव नहीं की हुई उसी मुक्ति, उसके साधन और साधक के प्रति अगुराग प्रगट होना असंभवित प्राय है। किन्तु इन सर्व के प्रति मासूर्य अरुचि और अप्रीति होना यह संभवित प्राय है। इस भाति मुक्ति के प्रति अनुराग का अभाव और अप्रीति का सद्भाव जब तक हो तब तक मुक्ति के लिये सदाचार का पालन, तप का सेवन न जाना यह

संभवित है। यह न हो तब तक जाने वाले नवीन कर्मों का रूपाय और प्राचीन कर्मों का क्षय नहीं होता तथा यह जब तक न हो वहाँ तक जीवका भ्रमण अटके नहीं किंतु अधिकाधिक वेग पूर्वक अनन्तकाल तक चलता रहता है यह कोई आश्चर्य नहीं। इन सब आपत्तियों का अंत लाने में सब से प्रथम और सब से सरलता पूर्वक आचरण कर सके ऐसा साधन कोई भी हो तो वह वैद्यगुरु का पूजन होता है। उसमें भी देव की पूजा मुख्य है। इस पूजन करने में सदाचार का सर्वोत्कृष्ट पालन, तप का उत्कृष्ट सेवन तथा सदाचार और तप का सेवन करके उनका सर्वोत्कृष्ट फल मुक्ति प्राप्त करने का भाव रहता है। शास्त्रकार पू. महोपाध्याय श्री मानप्रियजी गणेश्वर श्री धर्मसंग्रह ग्रंथ में परमाते हैं—

“जिन भजन जिन विम्बं, जिनपूजा जिनमत च यः कुर्यात्
तस्य नरामरशिशुख फलानि कल्पन्त्यास्थानि”

जो जिन मंदिर, जिन विम्ब प्रतिमा नई करावे, जिन पूजन करे और जिन भक्ति को आचरण में लावे उस मनुष्य के स्वर्ग और मोक्षसुख हथेली में है। समर्थ शास्त्रकार महर्षि हरिभद्रसूरि म० परमाते हैं—

चैत्यवन्दनतः सम्यक् शुभो भाव प्रजायते ।
तस्मात् कर्मक्षयः सर्वमत कल्याणमश्नुते ।

चैत्या अर्थात् जिन प्रासाद अथवा श्री जिन विम्ब को सम्यक् प्रकार से बन्दन करने से प्रकृत शुभ भाव उत्पन्न होते हैं। शुभ भाव से कर्म का क्षय होता है और कर्म के क्षय से सर्व कल्याण की प्राप्ति होती है।

आवश्यक नियुक्ति में कहा है कि “भक्ति विणयराण

खिज्जती पुत्रसचिवा फम्मा जिनेश्वरों की भक्ति करने से पूर्ण के अनेक भवों में सचित किये कर्मा का छय होता है ।

आश्चर्यक टीका में भी पूर्ण महर्षियों ने कहा है कि "भक्तोए निखवराण परमाण्जीण-पिञ्ज-दोसारण । आरोग्यपोहिलाभ समाहिमरण च पावति" निम्न राग और द्वेष क्षीण हुये हैं ऐसे जिनश्वरों की परम भक्ति करने से जीव आरोग्य बोधिलाभ और समाधिमरण को पात है । यहा आरोग्य शब्द से ज म और मरण अभाव समझना है । कलिभल सवज्ञ श्री हेमचन्द्राचार्य म० ने चौबीस जिनों का स्तुति करते प्रारम्भ में ही बतलाया है कि—

नामाकृतिद्रव्यमावै पुनतस्त्रिजगज्जनम् ।

क्षेत्रे काले च सर्वस्मिर्नर्हत ममुपास्मह ॥

नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव द्वारा सर्व क्षेत्र और सब काल में तीन जगत् के जीवों को पवित्र कर रहे अर्हत्तों की हम उपासना करते हैं । श्रीमद् हरिभद्रसूरीश्वरजा ने संबोध प्रकरण में देव के चार निक्षेपों के त्रिपय में उल्लेख किया है, जिस वस्तु में त्रिनेत्र निक्षेप घटने का मादूम हो सके उस वस्तु में उनमें निक्षेपा घटाने अगर जिसमें अधिक निक्षेपा घटाने की जानकारी न हो तो चार निक्षेपा तो अवश्य घटाना, त्रिनेश्वर भगवान का जो नाम है "नाम त्रिन" और त्रिन प्रतिमा वह "स्थापना त्रिन त्रिनेत्र भगवत्त का तीर यह "द्रव्यत्रिन" समयसरण में बैठे हुये यह "भावत्रिन" है । जिस वस्तु में भाव निक्षेपा सत्य होता है उस वस्तु का द्रव्यादि चार निक्षेपा निश्चय शुद्ध होता है और अशुद्ध भाव निक्षेपा वाली वस्तु के चार निक्षेपा अशुद्ध होते हैं । इस कारण से शुद्ध योग का कारण होने से त्रिनेन्द्र प्रतिमा त्रिनेत्र समान है और त्रिनेन्द्र की पूजा करने जैसा फल प्राप्त कराती है । द्रव्य पूजा पहले और पीछे भी शुभ और स्थिर योग की अनुकूलता वाली ही कही है जैसे साधु के

आचार के विषय में होनी हिमा यह अहिंसा, यह अहिंसा पहले या पाद्व हानी नहीं है अथवा अहिंसा ही कायम रहती है, उसी प्रकार यह व्यापार का त्याग करने का गुण से और सर्व स्थान पर मैत्री भाव से सम्यग् दृष्टि लोगों को यह भी निरन्तर भाव पूना है। इस भाव संया देश संयत और असंयत इन तीनोंको भाव पूना होती है। इस कारण से जिनेन्द्र पूजा में पहले या पीछे कहीं भी हिमा भाव दात नहीं है। अध्यात्म योगवाणी श्री जिनेन्द्र पूजा तो हमेशा फल्युत्पन्न है। महर्षि मूरिपुरंदर श्री हरिभद्रमूरि ने तीसरे पचासके "नित्य ध्यान की विधि में कहा है —

“उर्ध्व परम सिद्धी जायते जतो दद तत्रो अहिंसा ।
 ततस्मि वि अदिगत्त, मन्वस्सोयाणुमारणे ॥

मत्रादि द्वारा सामान्य सिद्धिया प्राप्त होती है जबकि "चैत्यनदन" द्वारा परम सिद्धि (मोक्ष) प्राप्त होती है। इस बात का ध्यान रख कर म ग जीओं को "चैत्यनदन" में अत्याधिक प्रयत्न रखना चाहिये।

श्री धीतराग की भक्ति इस विषयम ससार में अमृत का कु ड है। जिसमें स्नान करने वाली आत्मा पाप-बन्ध से पावन हुए विना रह नहीं सकती। श्री धीतराग की भक्ति रूपी अमृत के कु ड में निरन्तर स्नान करने के लिये शास्त्रकारों ने भोक् प्रहार के मार्ग बतलाये हैं। उनमें शास्त्रोक्त विधि पूर्वक देवाधिदेव का पूजन करना मुख्य है। आवाल वृद्ध मभा सरलता आमानी से आचरण कर सकें, ऐसा पवित्र धर्म वृत्त्य है। यह आत्मा के ऊपर लगे हुए कर्म मल धोन का एक प्रकार का आंतरिक स्नान है। धीतराग देव की भक्ति के लिये जैन शास्त्रा में जो विधि प्रदर्शित की हुई है उसे यत्किंचित् समझाने के लिये इस पुस्तक द्वारा प्रयास किया है इस में अज्ञानता बश या प्रेस आदि के दोष से कोई भी अशुद्धि या त्रुटि रह गई हो

तो उसके लिये क्षमा २ प्रार्थी है । इस ग्रन्थ के तैयार करने का मुख्य सहायक रावस्थान के ग्रामों के श्रद्धालु भव्य जीवों को श्री विनेश्वर देव की पूजन विधि का पूर्ण परिचय कराना है । पू मुनि श्री अभय सागरजी, पू पचासनी भानूविजयनी गणेश्वर के शिष्यव्र श्री भद्रगुप्त विजयनी, श्री राजेन्द्रविजयनी ने सशोधनादि करने की महती कृपा की है । अरिहंत देव की पूजन विधि के साथ सन्निप्र गुरु वन्दन विधि, देवद्रव्यादिक की व्यवस्था का शास्त्रीय मार्ग दर्शन बतलाया है । इस ग्रन्थ के तैयार करने में पं तपागन्धीय श्री जगच्चन्द्रमूर्ति के शिष्य देवेन्द्रसूरीश्वर रचित "भाष्यत्रयम्" श्रीमानविजयनी गणेश्वर कृत "धर्म सप्रह" भाषान्तर, श्री रत्नजोशर सूरि विरचित "श्री धाद्विधि आदि शास्त्रों की सहायता प्राप्त की है ।

गणेशलाल मुणौन

समग्रहकर्ता

व्यापक (राव)



उद्बोधन

मनुष्य जैसे जैसे भौतिक पदार्थों में से सुगम प्राप्त करने हेतु अधिक पुरुषार्थ करता है वैसे वैसे उसकी मानसिक अशान्ति बढ़ती जाती है। आन के वैज्ञानिक युग में मानव को भौतिक सुख के साधन अधिक प्राप्त हैं उसी परिमाण में उसने अपनी मानसिक शांति को खो दिया है। आन का वैज्ञानिक युग चाहे जितना सुख के साधन उपलब्ध कर दें, किंतु उससे उसकी मानसिक तृप्ति नहीं होती वरन् अतृप्ति के दाहवृत्त से प्रतिदिन और प्रतिपल जलता रहता है।

आज मानव ने भौतिक पदार्थों के पीछे अंधे बनकर दौड़ना शुरू कर दिया है और अपने आचार विचार की उच्च भूमिका को खो दिया है। दिन प्रतिदिन वह नीचे आचार एवं विचारों की भूमिका पर जा रहा है। परिणामतः उसके चित्त में अनेक प्रश्नों, समस्याओं एवं संतर्पणों ने उथल-पुथल मचा रखी है।

आज का अधिकांश मानव समाज मानसिक रोग से पीड़ित हो चुका है। ऐसा मानसिक रोगों के चिकित्सा शास्त्रियों का मन्तव्य है। अमेरिका के एक प्रसिद्ध मानस रोग चिकित्सक ने अब तक लगभग दस से बाराह हजार रोगियों की परीक्षा की, उनमें नाना विध प्रश्न पूछे, उपचार के बारे में जानकारी प्राप्त की, निदान हुआ, और परिणाम में उन्हें मात्र पड़ा कि उनमें से अधिकांश रोगी ऐसे थे जो ईश्वर को नहीं मानते थे और उपामना मंदिर में नहीं जाते थे।

उन्होंने निष्कप निशला क्रि जो मनुष्य परमात्मा में श्रद्धा नहीं रखता, मन्दिर में नहीं जाता प्रिगेपत वे ही मनुष्य मानसिक अशान्ति एवं मानसिक रोगों के चगुल में फसे हैं । जो मनुष्य परमात्मा के प्रति श्रद्धालु है, प्रभु मन्दिर में दर्शनार्थ जाने हैं वे अधिकांश में अपने चित्त की स्वस्थता सुरक्षित रखते हैं और मानसिक रोगों से मुक्त होते हैं, और तत्पश्चात् वे डाक्टर भी प्रभु के प्रति श्रद्धालु एवं मन्दिर के उपासक बन ।

Return to Religion नामक अंग्रेजी पुस्तक से यह पटना पढ़ने को मिली । भौतिक पदार्थों की इच्छा को मर्यादित रखने का तत्व जो मानव के पास न हो, तो उन असीम आकांक्षाओं में से ऐसा दारुण दायो नल भभये कि उमी दायानल में मनुष्य स्वयं ही जलकर राख बन जाय । भौतिक पदार्थों का असाम आकांक्षाओं को मर्यादा में रखने वाला श्रेष्ठ तत्व यदि कोई है तो वह है परमात्म तत्व । परमात्म तत्व के प्रति श्रद्धालु मानव भौतिक सुखों की आकांक्षाओं को मर्यादित रख सकता है और उससे उसका चित्त स्वस्थ, शांत और प्रसन्न बना रहता है । आज जितने अंशों में मानव ईश्वर के प्रति श्रद्धालु है उतने ही अंश में वह मानसिक शान्ति का अनुभव करता देखा जाता है ।

परमात्म तत्व पर श्रद्धालु मनुष्य भौतिक पदार्थों के प्राप्त्यय मया श में पुम्पार्थ नहीं करता ऐसा नहीं है उनके प्रति वह प्रयत्न ईश्वर के आदेशानुसार ही करता है और प्रभु आज्ञानुसार पुम्पार्थ करने का जो भी फल उसे प्राप्त होता है उसी से वह सन्तुष्ट हो जाता है । उसमें उसका चित्त सदैव प्रसन्न एवं निरोग रहता है । तथा पुम्पार्थ करत उसे जो सुख प्राप्त होता है 'वह प्रभु कृपा से ही प्राप्त हुआ है' एसा मानता है । इसीलिये ईश्वरदशानुसार वसना त्याग करने में भी वह नहीं हिचकिचाता ।

इस तरह चित्त की प्रसन्नता सुरक्षित रखने के लिए परमात्म तत्व पर अधिकतम ध्यान रखना अनिवार्य हो जाता है। तब प्रभु का स्मरण, दिन रात हर कार्य एवं प्रसंग पर करना भी उतना ही आवश्यक हो जाता है।

नाम-स्मरण हृदय पर अपूर्ण प्रभाव डालता है। परन्तु वह नाम स्मरण पवित्र स्थल पर प पाप स्थाणु से अलग होकर करने पर अधिक प्रभावोत्पादक होता है। जैसे क्षय रोगी को शुष्क वायुमण्डल में औषधि विशेष लाभदायक होती है। इसलिये उसे सिन्धु वायुमण्डल में शुष्क वायुमण्डल में स्थाणुतरिम किया जाना है। यह आवश्यक समझ जाना है, उसी तरह भौतिक पदार्थों की आसक्ति के भयानक रोग से ग्रसित मनुष्य को भी द्दर्शरोपासना रूरी औषधि ही उस समय विशेष प्रभावोत्पादक होती है जब वह पवित्र स्थल पर रहे। परन्तु मानव के लिये चौबीसों घंटे पवित्र स्थान में रहना असम्भव है। उसे सासारिक रागरोगों एवं रागद्वेष पूरित प्रपञ्च मय क्षेत्र में अधिक शांति समय व्यतीत करना पड़ता है। हमेशा पवित्र स्थल में तो वह तब ही रह सकता है जब वह भौतिक पदार्थों की आकांक्षा का सर्वथा त्याग करदे एवं त्यागी साधु बन जाय। जब तक वह सर्व त्यागमय साधु जीवन अंगीकार नहीं करता तब तक उसे हिंसा, झूठ, धोरी, दुराचार, परिग्रह आदि अनेक पापों का सेवन करना पड़ता है तब वह मर्यादा का उल्लंघन करके हिंसादि पापों का कर्त्ता न बन जाय इस हेतु प्रतिदिन ज्यादा में ज्यादा समय परमात्मा के सात्त्विक में व्यतीत करना चाहिये।

इस तरह मनुष्य परमात्मा के सात्त्विक में समय व्यतीत कर सके, उनके नाम का एवं गुणों का ध्यान कर सके इसी हेतु उसे प्रभु मन्दिर में जाना चाहिये। परमात्मा के नाम का स्मरण उन्हीं की

आकृति के सम्मुख किया जाता है तब मनुष्य का आत्मभाव विशेष उल्लसित होता है और उस परम तत्व के माथ गाँ सम्बन्ध स्थापित हो जाता है ।

मनुष्य को जिस पर प्रेम होता है, भक्ति वात्सल्य होता है इसका नाम जैसा प्रिय लगता है वैसे ही उसकी आकृति (प्रतिमा प्रतिद्विनि) भी प्रिय लगती है और नाम से भी आकृति ज्यादा प्रिय लगता है । अतः मनुष्य अपने श्रेय की, प्रेमी की आकृति (चित्र) अपने घर में अपने पाकेट में रखते हैं, उड़ देखकर सुख का संवेदन अनुभव करते हैं । उम्मी प्रमाण म प्रेमी के साथ का सम्बन्ध हृत्तर होना जाता है ।

परमात्मा ही जब श्रेय बन जाते हैं तब उसका नाम जैसा प्रिय लगता है उसी तरह उनकी आकृति भी प्रिय लगेगी । जो उनकी आकृति प्रिय नहीं लगती तो प्रभु पर उनका प्रेम है श्रद्धा है यह कैसे माना जाय ? क्या जगत में कोई ऐसा प्राणी मिलेगा जिसे अपने प्रेमी का नाम अच्छा लगता हो और आकृति अच्छी नहीं लगती हो ? क्या कोई निभत्स चित्र देखकर तुम्हारे हृदय में बुरे भाव नहीं पैदा होते ? क्या सिनेमा के परदे पर दीखत दृश्यों ने तुम्हारे हृदय में अच्छे व बुरे भावों को पैदा नहीं किया ? क्या किसी नगर मध्य में स्थापित किसी शहीद या देश नेता की मूर्ति ने खड़े रहने को विवश नहीं किया ? तुम्हारे हृदय में किन्हीं भावनाओं को उदित नहीं किया ?

इसी तरह प्रभु मन्दिर में परमात्मा की प्रतिमा भी तुम्हारे हृदय में अवश्य ही पवित्र भावनाएँ प्रकट करेगी । मलिन, अपवित्र विचारों को नष्ट करेगी । प्रतिमा की वीतराग मुद्रा तुम्हारा भौतिक पदार्थों के प्रति अनुराग निर्मूल करेगी । विषयासक्ति कम कर उनके प्रति वैराग्य पैदा करेगी ।

तुम्हारा इष्ट प्रमक्षता अनुभव करेगा। प्रीय, मान, माया और लोभनहित दुःख का उपशम होगा। हिंसा, शूद्र, चोरी, दुराचार तथा परिग्रह की वामनायें विराम लेगी। अहिंसा मत्स्य, अर्थात् सदाचार और निष्परिग्रहता की सुगन्ध से तुम्हारी आत्मा मद्धक अटेगी। तुम्हारा जीवन व्यवहार उन्नत भूमि का पाने लगेगा।

एक ही ध्यान है। आप परमात्मा की ओर झुको। वाका नाम जपो। उनकी प्रतिमा की सेवा करो, उनकी तुम्हारे लिये जो आशाएँ हैं उन्हें समझो। ससार का बाह्य मुक्त आपसे पास हो या ना हो आपका चित्त अशांत न बने, मन्ताप का अनुभव न करे, तो अथर्व आप दिन प्रतिदिन परमात्मा तत्व के निरन्तर पहुँचत जाँगे।

जय धीतराग

व्यावर (रा००)

—मुनि भद्रगुप्त विजय



॥ ॐ ह्रीं ग्लृं ॥

देवाधिदेव अरिहंत-भक्ति

सिद्धमरुयमणिदियमणरजनमच्चुय वीर ।

पणमामि मयल तिहुयण-मत्थय-चूडामणिं सिरसा ॥

सिद्ध अरूपी अगोचर, अनयद्य-पवित्र, स्थिर स्वभाव वाला और समग्र तीन भुवन के मस्तरक के चूडामणि जैसे श्री महावीर स्वामी को मैं मस्तर द्वारा नमस्कार करता हूँ ।

देवाधिदेव अरिहंत-भक्ति का महत्त्व

श्री अर्हंत परमात्मा का पूजन शास्त्रकारों ने श्री राजप्रनीय व श्री जीवापीयाभिगम सूत्र आदि में—

“पुच्य पच्छा हियाए सुहाए खेमाए निस्सेयमाए आणु
गामियत्ताए मरिस्माइ”

अर्थात् पहले और पीछे हित का कारण, सुख का कारण, कल्याण का कारण, मोक्ष का कारण और भय भय में अनुगामी (साथ आने वाला) बनलाया है ।

आवश्यक नियुक्ति में कहा है कि—

“भक्तीड जिणपराण सिज्जति पुव्वसचिआ कम्मा”

अर्थात् विनेश्वरों की भक्ति करने से पूर्व ये अनेक भयों के संचित कर्मों का क्षय हो जाता है। शतार्थिक आचार्य श्री मोमप्रभसूरि म० ने सिन्दूर प्रकरण किंवा सूक्तिमुक्तावली के जिनपूजन प्रकरण में घतलाया है—

“पाप लुम्पति, दुर्गति दलयति व्यापादयत्यापदां
पुण्य सचिनुते थिय वितनुते पुष्पाति नीरोगताम्
सौभाग्य विदधाति पल्लयति प्रीति प्रयुते यश,
स्वर्ग यन्तति निरृति च रचयत्यर्चहिता निर्मिता ॥”

अर्थ—जिनभगवान् की पूजा पाप का नाश करती है, दुर्गति का निवारण करती है आपत्तियों का नाश करती है पुण्य का संचय करती है, लक्ष्मी की वृद्धि करती है, आरोग्य को देती है, सौभाग्य प्राप्त कराती है, प्रीति को पल्लवित करती है, कीर्ति को फैलाती है और स्वर्ग और मोक्ष भी देती है। भगवान् श्री सुधर्मास्वामी के ५२ वे पट्टधर आ० श्री रत्नेश्वरसूरि म० ने शाद्धविधि में उल्लेख किया है—

“प्रातःकाल में की हुई जिनपूजा रात्रि में किये पाप का नाश करती है। मध्याह्न समय में की हुई पूजा जन्म से लेकर किये पाप का क्षय करती है और संध्या समय में की हुई पूजा सात जन्म के किये पाप का निवारण करती है। जलपान, आहार औषध, मित्रा, विद्यागन लेती यह सात चीजे अपने ० समय पर की हों तो अच्छा फल देती है। वही प्रकार जिनपूजन भी अवसर (समय) पर किया हुआ सन्फल देता है। त्रिकाल जिनपूजन करने वाले भक्त जीव समकित

द्रव्यस्तव

श्री धर्मसमूह के रचयिता महोपाध्याय श्री मानसिजयजी म० ने उल्लेख किया है —

“विदितार त्रिय सेवइ, सद्धानु सत्तिम अणुट्टाण ।
दव्वाइदोमनिहओरि पक्खमायं वड्ड तंमि ॥

भाषार्थ—अद्धानु शक्तिमान् आत्मा जो = अनुष्टान (धर्मक्रिया) परे उसमें हर एक विधि बराबर करे । फिर भी कदाचित् द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव सामर्थ्य आदि सामग्री पूर्ण न हो, प्रतिशून्यता ही तो भी उस क्रिया की विधि का पक्ष तो रखता ही प्याहिए ।

कलिकाल सत्रार्थ श्री हेमचन्द्राचार्य म० योग शास्त्र से महाश्रावक की दिनचर्या यतलाते हैं—

स्तुति

“श्राद्धे मुहूत उत्तिष्ठत् परमेष्ठिस्तुति पठन् ।
किंधर्मा किं कुलश्चास्मि किं ततोऽस्मीति स्मरन् च—
शुचि पुष्पासिपस्तोत्रैर्द्वयमभ्यर्च्य वेश्मनि ।
प्रत्याख्यानं यथाशक्ति कृत्वा दनगृहं त्रजेत् ॥
प्रविश्य विधिना तत्र त्रिं प्रदक्षिणयज्जिनम् ।
पुष्पादिभिस्तमभ्यर्च्य स्तनैर्हृत्तमैः स्तुयात् ॥

भाषार्थ—श्रावक पिढली दो घड़ी रात्रि रहे तब जाग्रत होकर बीच परमेष्ठि नक्कार मंत्र की स्तुति कर यात्र करे कि 'मेरा क्या धर्म है ? मेरा कुल कौनसा है ? मैंने कौनसे मंत्र अंगीकार किया है ?

यह सत्र याद करे (पूजा के समय) पवित्र होकर पुष्प नैवेद्य और स्तोत्र (स्तुति) से गृहचैत्य में स्थापित देवाधिदेव की पूजा कर फिर शक्ति के अनुसार प्रत्याख्यान करके धड़े चिनभजन में (देवालय) विधिपूर्वक जाए। मंदिर में प्रवेश कर चिनशरदेव के चारों तरफ तीन प्रदक्षिणा कर पुष्प आदि द्रव्यों से पूजा करके उत्तम स्तोत्रादि द्वारा भगवान की स्तुति करे।

:: द्रव्य पूजा के प्रकार ::

१४४४ ग्रन्थों के कता महर्षि हरिभद्रसूरि म० न मनोव प्रकरण में कहा है—

दुविहा निणिदपूआ दब्बे भाये अ तत्थ दब्बम्मि ।

दब्बेहिं निणपूआ, निणजाणा पालण भाये ॥

भावार्थ—द्रव्य पूजा और भावपूजा ऐसी दो प्रकार की श्री जिनपूजा है। उत्तम पुष्पादि उत्तम द्रव्यों द्वारा जो की जाय वह द्रव्य-पूजा और श्री जिनेश्वरदेव की आना का पालन करना भाव-पूजा है।

श्री उमास्वाति याचक ने, पूजाविधि, प्रकरण में पूजा के २१ प्रकार बतलाये हैं।

(१) स्नात्र (२) विलपन (३) विमूषण (४) पुष्प (५) माला (६) धूप (७) दीप (८) फल (९) अक्षत (१०) पत्र (११) सुपारी (हथेली में रखने का फल) (१२) नैवेद्य (१३) जल (१४) घस्र (चदुआ पुटीया तोरण बाधना) (१५) धामर (१६) छत्र (१७) घान्त्रि (१८) गात (१९) नाटक (नृत्य) (२०) स्तुति (स्तयन-स्तोत्र) (२१) भंडार भरना।

शक्रस्तव सूत्र की ललितविस्तरा नाम की टीका में (१) पुष्पों

से अग पूजा (२) आम्रिय लैवेण से अघपूजा (३) स्तुति से भावपूजा (४) जिनाना का सपूर्ण पालनरूप प्रतिपत्ति पूजा कही है।

अगपूजा—श्री सुधर्माश्रामी के ५२ वें पट्टधर श्री रत्नशेखरसूक्ति में वे "श्राद्धविधि" में चित्तप्रतिमा का निर्मात्य (प्रतिमा के ऊपर के रात्रि के बासी पुष्प) उतारना मोरपीछी द्वारा पूजना, प्रक्षालन करना, धालानुष्पी से फेसर प्रमुख द्रव्य उतारना, केशरादिक द्रव्यों से पूजा कर पुष्प बदलना, पंचामृत स्नान करना, शुद्ध जल से अग्निपेक करना, धूप दिये हुये शुद्ध कोमल वस्त्रा से अंगनुष्णना, कपूर कुंकुम मिश्र किये हुए गोरोचना कस्तूरी द्रव्यों से तिलक आदि करना, सर्वाङ्गच्छेद रत्नचिह्नित सुवर्ण तथा मोती के आभरण और सोने रूपे के मूल चढ़ाना धूप करना आदि।

'श्राद्धदिनवृत्त्य' में कहा है कि—

“काण्डण रिदिणारुद्धान, सेयवत्थनियम्पणो ।

मुदकोसतु काण्डण गिहविनाणि पमज्जण ॥

भावार्थ—विधि पूर्णक स्नान करके पवित्र स्वेत वस्त्र धारण किये हैं निम्नने ऐसा श्रावक मुख कोश बाध कर गृहमन्दिर के विम्बों का प्रमार्जन करे।

:: पूजन विधि ::

श्री विनेश्वर देव की पूजा का समय सामान्य प्रातःकाल, मध्याह्न और सायंकाल बताया है। गृहस्थ प्रातःकाल त्रसजीव रहित समतल ठोस भूमि पर अचित्त जल से, अगर अचित्त जल नहीं हो तो छाने हुए सचित्त जल से विधिपूर्वक स्नान कर पवित्र स्वेत वस्त्र धारण कर मुखकीर्ण उत्तरामग के आठ पट कर नाक व मुख पर समाधि रह इस भाति याचे (अरिहत देव की पूजा आदि कार्या में जोड़ लगा हुआ

जला हुआ, फटा हुआ, वस्त्र त्याग्य है। जिस वस्त्र से भाड़ा मिश्रण मैथुन आदि क्रिया हो वह वस्त्र देयपूजन न धरनीय है) पुरुषों को हो वस्त्र धोती तथा उत्तरासन बिना तथा स्त्रिया को तीन वस्त्र बिना देवपूजा आदि करना नहीं कल्प्यता है। पूजन के लिये गुठ घोया हुआ सफेद वस्त्र होना चाहिये। पूजा पीडशक म कहा है कि "सिन शुभप्रप्रणति इसकी टीका में उन्नतल के शुभ वस्त्र से ऐसा अर्थ किया है। शुभ अर्थात् सफेद सिराय का अर्थ उत्तम जाति का लाल, पाले रंग वाला समझना।

श्रीजिनमदर में जाकर पांच अभिगम (मयादा) का पालन करे। (१) पुष्प, तंगोल आदि सचित्त वस्तु का त्याग (२) शरीर पर पहने हुए मुकुट के सिराय अन्य आभरण अलंकार आदि अचित्त द्रव्या का त्याग न करे (३) उत्तम वस्त्र का उत्तरासन धारण करे (४) श्रीजिनप्रतिमा के दर्शन होते ही दोनों हाथ जोड़कर ऊँच मस्तक के लगा 'नमोनिष्णाण' बोले (५) श्रीजिनेश्वर देव के दर्शन में मन की स्थिरता रखें।

पवित्रता पूर्ण जल, पुष्प इत्यादि वस्तु लाकर ओरसीया प्रमार्जन व पवित्र जल से गुठ कर केशर, वरास मिश्र किया हुआ चवन बिस, पात्रम भर, धूप, दीप, नैवेद्य, फल भव्य अदल शुद्धजल, दूध आदि सब सामग्री इकट्ठी कर, अलग पात्र म फगर लगर अपने मस्तक पर तिज्ञक कर, "निसीहि (मन वचन काया से संसारिक व्यापार का निषेध) कह कर जिनभयन म प्रवरा कर, श्रीजिनेश्वर देव के दर्शन होते ही दोनों कर जोड़कर तथा मस्तक नमा कर "नमो निष्णाण' कहते नमस्कार करे।

श्रीमद् हरिमद्रसूरिजी ने सबोध प्रकरण में इम प्रकार कहा है—

"पवरेहिं साहणेहिं पाय मावो वि जायए पररो।

न य अन्नो उरओगो एएमि मयाण लट्टपरो ॥"

भाग १.—पूजा न नामही उत्तम होने में जीव को प्रायः भाग में उत्तम होता है और मनुष्य को भी पुण्य के योग में प्राप्त हुए) अरुनी नामकी गतिनमस्कि न उपयोग (दने) क विनाय ऐसा दूसरा कोई उत्तम उपयोग नहीं ।”

तीन प्रदक्षिणा कर रंगमंथप में देवाधिपति के सामुग प्रस्थी पर पंचांगी तीन प्रणाम (नमस्कार) विधिपूर्वक कर दूसरी “निसीद्दि” कहत हुए धोली की एक ताग मुनी मन्त्रशोश शाय पूजन सामग्री सहित मृग संभारे में प्रवेश कर जिनेश्वर देव की प्रतीमाती पर रात्रि में रह हुए निर्मात्य की मोरपीठी से उतार कर पिनप्रासाद का प्रमार्चना करे अथवा दूसरों में कराव । प्रसाल का पानी निकलने की जगह पवित्र साग पात्र रखर श्री जिनेश्वरदेव की हाथों और धूप करना तथा दाहिनी ओर दीयक रखना चाहिये ।

“भूमिष्णुष्पृग्मीम तु, काउ गयोदग नर ।
नश्रो भुवणग्राहे तु, एहवेद भक्तिमनुजो ॥

श्राद्धदिन शृ० गा० ५६

भावार्थ—भक्तिवत श्रावक प्रमार्चन किये पीछे केसर, धराम तथा उत्तम औषधियाँ और चदन आदि में मिश्रित कर, लज्जम सुगंधी पानी से त्रिभुवननाथ की स्नाप करावे । प्रभुजी का श्रोनों हाथों द्वारा पवित्र पंचामृतमिश्रित जल कलश में अभिषेक (स्नाप) कराते समय “हे स्वामिन् ! चौसठ इन्द्र ने बाल्यावस्था में मेरु पर्वत पर सुवर्णकलश में आपको यह स्नाप कराया था उस समय निसने आपके दर्शन किये वह जीव धन्य है, इत्यादिक मन में चिंतयन करना । इस धात का पूण ध्यान रहे कि कलश जिनविम्ब के किसी भाग का स्पर्श नहीं करे । फिर शुद्ध गीले वस्त्र से शेष रहा हुआ चदनादिक उतार, फिर भी अगर ऐसी जगह जहाँ गीले वस्त्र

द्वारा चंदनादिक दूर नहीं हो सके वहा जयणापूर्वक हलके हाथों में बालाकूची (खनकूची) का प्रयोग कर चंदनादिक दूर करें, शुद्ध जल से प्रभु का अभिषेक करें। फिर धूप से धूपित श्वेत स्वच्छ अगलुद्रणों से पहली धार प्रभु प्रतिमा पर रहा हुआ जल साफ करे, दूसरे कोमल अगलुद्रण से धार धार जिन त्रिभु के सत्र अंगों को स्पर्श कर सर्वथा सूखा करे। इस प्रकार दो अगलुद्रण से से सत्र प्रतिमाओं को निजल कर जहा २ थोड़ा भी गिलापन रहे वहा वहा तीसरा अगलुद्रण करें। अगलुद्रण कोमल, उत्तम, पानी को चूसे ऐसे, मैल रहित कपड़ से करे।

नवांग पूजा—केसर मिश्रित चंदनादि से प्रभु के नौ अंगों पर क्रमश (१) दो चरण के अंगूठे (२) दो जानु (ढीचण) (३) दो हाथ (४) दो कंधे (श्रभा) (५) मस्तरु पर तिलक करे (६) वसी भाति प्रतिमाजी के ललाट (७) कंठ (८) हृदय कमल (९) नाभि पर तिलक करे। पूजा दाहिने चरण के अंगूठे से दाहिने हाथ की अनामिका (कनिष्ठा के पास वाली) अंगुली से क्रमश शुरू करे। पूजा कर सुगन्धित पुष्पों से तिन प्रतिमा का पूजन करें।

पुष्प पूजा विधि—पुष्प बगीचे आदि उत्तम २ स्थान से माली अथवा बगीचे के रक्षक को सतोप हो उस भाति सम्पूर्ण मूल्य देकर स्वयं अथवा त्रिदशसपात्र पुरुष द्वारा मगाना चाहिये। वह भी पवित्र करंडिये या धातु के उत्तम पात्र में ऊपर पवित्र वस्त्र ढाक कर छाती पितनी उंचे दोना हाथों में रखकर लाना चाहिये। पुष्प सूते, जमीन पर पड़े हुए, टूटी पालकी वाले, अशुभ या अपवित्र वस्तु से स्पर्श किये हुए, जिना खिने प्रभु पूजा में त्याग्य हैं। विशेष सामर्थ्य वाला रत्न सोने मोती के आभरणा से तथा स्वर्ण चांदी के पुष्पों से प्रभु को अलंकरण करे। चंदनादि पूजा इस भाति से करे कि प्रभु

के नेत्र मुल्ल डके नहीं। प्रभु की सुगन्धित घूर्ण द्वारा धूप पूजा एवं धाद दीपक पूजा करे।

आ० दिनकर्य गा० ५८ में कहा है—

“कायम्ण्टपण रज्जे, तथा खेलत्रिमिचण ।
धुडधुत्तभणण चेत्र, पूअतो जगत्तधुणो ॥

भारार्थ—जगतधधु श्री त्रिनेत्र देव की पूजा करते समय शरीर सुनलना, धूप बलगत आदि निकालना तथा स्तुति स्तोत्र बोलना वर्जनीय है।

मन-श्चन-काय-श्चत्र भूमि तथा पूजा की मामधी की त्रिपुद्धता और धित्त की निर्मलता व स्थिरता यह सात प्रकार का गुद्धि अरिहंत परमात्मा की पूजा के समय अवश्य रहे। प्रतिमा के प्रक्षाल के लिये साये हुए पात्र में से जल लेकर धाव अंगुलुक्षण आदि नहीं घोना लेकिन दूसर पात्र में रहे हुए गुद्ध जल से घोना अर्थात् जिन वस्त्र के बह्मान के हेतु एक ही जाति होते हुए भी चंदन जल आदि द्रव्यों की पूजा के लिये अलग रहे।

:: अग्र पूजा ::

“गधत्र-नट-वाइअ-लरया जलारत्ति आई दीराई ।
ज किच्च त सघ्र पि, ओअरई अगगूआए ॥

(चैत्यवदन वृ० भा०)

भारार्थ—गायन करना, नृत्य करना, धात्रिष बजाना, लुण वतारना, आरती, दीपक वतारना, जो २ कार्य हैं वह अग्रपूजा में गिने जाते हैं।

विशिष्ट प्रकार के खाद्य, अक्षत, नैवेद्य, फल आदि भगवान के आग (पाटपर) रखना तथा आरती, गायन नृत्य शण्डि आदि सब अपपूर्णा है।

अगपूर्णा की भांति अपपूर्णा के समय सुन्दर भावनायें पैदा होती हैं जिसका रयाल पाटकों को नीचे व दोहों पर से हो सकता है।

दीपक पूजा समय:—

द्रव्यदीप सुभिरु थी, करता दुस होय फोरु ।

मात्नीप प्रगट हृत्रे, मासित लोहालोरु ॥

अक्षत पूजा समय —

शुद्ध असड अक्षत ग्रही नदायर्त विशाल ।

पुरी प्रमु सन्मुख रहो, टाली सफल जनाल ॥

यदि नदायर्त साधियों की रचना न हो सके तो सामान्य स्वस्तिक पाट पर बना कर, उसके ऊपर, अक्षत की तीन ढगली कर, ऊपर चद्राकृति, उसमें एक बिंदु की रचना करें।



अक्षत, नैवेद्य और फल चढ़ाने समय हर धार निम्न श्लोक बोले—

“ॐ ह्रीं श्रीं परम पुरुषाय परमेश्वराय परमामने श्री (मूल नायरुनी का नाम) जितेन्द्राय जमनरा मृत्यु निवारणाय अक्षत (नैवेद्य, फल) यजामहे स्वाहा

स्वस्तिक रचना कर भावना भाव कि यह जैसे चार पंखी बन है जैसे ससार नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव चार गति वाला है जैसे यह तीन दुगलिया है जैसे मोक्ष मार्ग भी रत्नत्रयी स्वरूप है (सम्यग्दर्शनरूप, सम्यग्ज्ञानरूप और सम्यग्चारित्र्यरूप) इसका धरार बधलबन लेकर इस चंद्रावृत्ति ममान सिद्धशिला में पहुँच कर और उसमें रहे द्रुवे बिन्दु की भांति सिद्ध भगवान् जैसे निर्मल बनू।

नैवेद्य पूजा समय —

अनाहारी पद म कर्या, त्रिगद्गद्गद् अनत,
दूर करी ने दीजिये, अनाहारी शिखत ।

एक भव से दूसरे भव में जाने की क्रिया में जो मोड़ पड़ता है इसे त्रिगद्गति कहते हैं। ऐसी अनाहारी त्रिगद्गति करत अनतपार में अनाहारी रहा परन्तु उसे अनाहारी अवस्था का कोई मूल्य नहीं। मोक्ष में विराजने वाले हे प्रभु ! मेरी यह स्थिति दूर कर मुझे सच्चा अनाहारी पद-मोक्षपद प्रदान कर ।

फल पूजा समय —

इंद्रादिक पूजा भर्णी, फल लावे धरी राग,
पुरुषोत्तम पूजा करी, मागे शिखफल त्याग ।

इंद्र आदि देव प्रभु की पूजा करने के लिये प्रेमपूर्वक फल लाते हैं और पुरुषोत्तम अर्हत्तों की पूजा कर, जिसका फल शिखसुर है ऐसा त्याग मागते हैं। इसलिये मैं भी फलपूजा से परिणाम शिखफल प्राप्ति कराने वाला त्याग मागता हूँ। इससे संसार सम्बंधी सब कामनाओं का निषेध हो जाता है।

:: भावपूजा ::

“त्रिग्योत्रमामिगेगा अभुदयमाहणी भवे वीआ ।

निव्जुइरणी तह्या, फलया उ जहत्यनामेहि ।

(संक्षेप प्र० देवाधि गा० १६४)

भावार्थ—अपने यथार्थ नाम प्रमाण (अनुसार) पहली अग्रपूजा विघ्ना को शान्त करने वाली है दूसरी अग्रपूजा अभ्युदय साधने वाली है और तीसरी भावपूजा मोक्षफल देने वाली है ।

श्री त्रिनैश्वरदेव की अग्र अग्रपूजा से निवृत्त होकर तीसरी निसाही पूर्वक आगातना टालने के उद्देश्य से कम से कम जघाय श्री जिनप्रतिमा से नव हाथ, इतनी जगह न हो तो कम से कम आधा हाथ दूर, उत्कृष्ट साठ हाथ दूर बैठकर पुरुष श्री त्रिनैश्वरदेव के दाहिनी (जीमणे) तरफ तथा स्त्रिया बाए तरफ बैठकर चैत्यरदन रूप भावपूजा करें ।

भावपूजा का महत्त्व —

समर्थ शास्त्रकार महर्षि आ० श्री हरिभद्रसूरिजी ने कहा है—

चैत्यरन्दनत सम्यक् शुभो भाव प्रजायते ।

तस्मात् कर्मक्षयः सर्वं तत कल्याणमश्नुते ॥

भावार्थ—चैत्य अर्थात् श्री जिनमठिर अथवा श्री त्रिन त्रिम्ब को सम्यग् रीति से चन्दन करने से प्रकृष्ट शुभभाव पैदा होते हैं । शुभभाव से कर्म का क्षय होता है और कर्म के क्षय से सर्व कल्याण की प्राप्ति होती है ।

श्रीमद् हरिभद्रसूरिजी ने संक्षेप प्रकरण में त्रिन चैत्यरन्दन विधि बतलाने शुद्धचन्दन फल के विषय में उल्लेख किया है कि श्री

घदन से नीच को अर्धपुद्गलपराधर्षन से अधिक सत्कार भ्रमण रहता ही नहीं ऐसा विनाश्यागम में स्पष्ट बतलाया है।

प्रणाम के पांच प्रकार—

(१) मात्र एक मस्तक गमाकर जो प्रणाम होता है एक अंगी (-) दो हाथ जोड़कर दो अंगी (३) दो हाथ जोड़ मस्तक नमाने से तीन अंगी, (४) दो हाथ तथा दो डीचेण इस तरह चार अंग नमाने से चार अंगी, (५) दो हाथ दो घुटन तथा मस्तक शरीर के पांचा अधयत्रों नमाने से पंचांगी प्रणाम कहा जाता है।

उदा० श्री मानविनयनी ने "धर्मसमूह" में कहा है—

सुपमाए समखोपामगस्त पाणपि न कप्पई पाउ ।
 नो जाय चेइआइ, माहुरि ज वदिअया विहिणा ॥१॥
 मज्जणहे पुणरवि उदिउण नियमेण कप्पई मोत्तु ।
 पुण वदिअण ताइ पओमममपमितोमुअई ॥२॥

भार्य—आयक को प्रातःकाल जब तक श्री जिनमदिर में विनेश्वरदेव और गुरु महाराज को वंदन न किया हो तब तक पानी भी पीना नहीं कल्पता। मध्याह्न में उनको फिर पूजन-वन्दन कर भोजन करना कल्पता है और सायंकाल में पुनः उनको घटनादि करके शयन करें।

चैत्यवन्दन भाष्याणि में विधिपूर्वक चैत्यवन्दन के मुख्य २४ द्वार बतलाये हैं।

नोट—जिन विम्ब के मस्तक लगा कर वंदन नहीं करना चाहिये।

२४ मुख्य द्वार

(१) दशत्रिक (२) पाच अभिगम (३) दो दिशायें (४) तीन प्रकार के अग्रप्रद (५) तीन प्रकार की बंदना (६) प्रणिपान (७) नमस्कार (८) १६४७ अक्षर (९) १२१ पद (१०) ६७ सपदा (११) पाच दंडक (१२) १० अधिकार (१३) चार बंदनीय (१४) स्मरण करे योग्य (१५) चार प्रकार के त्रिनेत्र भगवान (१६) चार स्तुति (१७) आठ निमित्त (१८) १२ हेतु (१९) १६ आगार (२०) १६ कायोत्सर्ग के दोष (२१) एउ काउत्सर्ग का प्रमाण (२२) १ स्तवन (२३) ७ चैत्यरदन (२४) दश आशातनाओं का त्याग ३ निमीदि ३ दिशि निरीक्षण १६ कायोत्सर्ग के दोष और १० आशातनाओं का त्याग यह ३५ बोल त्याग करने योग्य है बाकी के २०३६ बोल आचरणे योग्य है ।

१ दशत्रिक

तीन निसीही—(१) तिन मन्दिर के मुख्य द्वार से प्रवेश करते समय । (२) द्रव्य पूजा करने जाते समय मंदिर के मध्य में कहना । (३) द्रव्य पूजा करने के पश्चात् चैत्यरदन करने के पहले निसीही कहना चाहिये ।

(२) तीन प्रदक्षिणा—परमात्मा के मूल गंभारे (मुख्यप्रासाद) के चारों तरफ ३ प्रदक्षिणा पद्धति से भ्रमण करना प्रणिपात्रिक कहलाता है ।

(३) प्रणामत्रिक—(१) दो हाथ जोड़ कर मस्तक के समुन्व रखना अथवा अथवा अथवा प्रणाम (स्त्रियों को अथवा अथवा प्रणाम करने समय हाथ ऊचा कर मस्तक के नहीं लगाना परन्तु यथास्थान पर रख के प्रणाम करना) (२) दो हाथ जोड़ कर मस्तक झुकाकर कटि को नमाना

अर्धांगनत प्रणाम (३) दो हाथ, दो घुटने और मस्तक इन पांच अंग से भूमि स्पर्श कर प्रणाम किया जावे । पचास प्रणाम पहलाता है ।

(४) पूजात्रिक—(तीन प्रकार की पूजा) (१) अंग पूजा (२) अन्न पूजा और (३) भाव पूजा ।

(५) अवस्थात्रिक—(१) छद्मस्थ (जन्म राज्य, भ्रमण अवस्था) (२) तीर्थङ्कर त्रेण्वली अवस्था और (३) निद्रा अवस्था ।

(६) त्रिदिशि निरोक्षण त्यागत्रिक—चैत्य घटन करते समय अपनी दृष्टि प्रभुओं के प्रतिमाजी के समुत्त स्थिर करना अन्य तीनों दिशाओं की तरफ देवता त्याग करना अर्थात् दायीं बायीं और पीछे दिशाओं की तरफ नहीं देखना ।

(७) भूमिप्रमाजनात्रिक—तीन बार जहाँ चैत्य घटन करना हो उसभूमि को उत्तरासग द्वारा अथवा चरजला से प्रमार्जन करना ।

(८) वर्णादि आलवनत्रिक—(१) सूत्रालवन चैत्य-घटन सूत्र के अक्षर स्पष्ट और शुद्ध ध्यानपूर्वक धारणा (२) अर्थालवन अपने ज्ञान के अनुसार विचारना (३) प्रतिमालवन

(९) मुद्रात्रिक—(१) दो हाथ की दस अंगुलिया एक दूसरे के बीच रख कर फमल के डोटे के आकार हूयेलियों का आकार कर, हाथों की दोनों कोनिया पेट उपर स्थापित कर हाथों को नमाये मस्तक से कुछ दूर रखकर जो मुद्रा बैठ या खड़े की जाती है योगमुद्रा है । (-) वाडरसग आदि में खड़े रहते समय भूमि पर दोनों पैरों का अन्तर अगले भाग में ४ अंगुल का पीछे के भाग में कुछ कम

नोट—प्रथम निसीद्धि— गृह व्यापार का त्याग

द्वितीय निसीद्धि—जिनगृह विषयक व्यापार का त्याग

तृतीय निसीद्धि—त्रय पूजा का त्याग

अनर रख खड़े हुवे हाथ दोनों लग्ना नर जो मुद्रा की जाती, तिनमुद्रा कहलाती है। (३) दोनों हाथ मोती के द्वीप के आकार कर लनाट के समुद्र उंचा रखना मुक्ता शुक्ति मुद्रा कहलाती है।

१० प्रणिधानत्रिक—(१) "जायति चंद्र्याई" सूत्र में तीनों लोक में रहे हुए चैत्या को नमस्कार होने से चैत्यदान सूत्र कहलाता है। (२) "जायत फेविसाहु" सूत्र में अद्वी द्वीप में रहे हुवे सर्व साधुओं को नमस्कार होने से मुनिवदन सूत्र कहलाता है। (३) "जयवीभराय" सूत्र में भव से वैराग्य^१, मार्गानुसारिपन^२, इष्टफल की सिद्धि^३, लोक विरुद्ध का त्याग^४, गुरुजनों की पूजा^५, परोपकार करण^६, सद्गुरु का योग^७ और^८ भव पर्यन्त उन सद्गुरु के वचनों की सेवा और भयोभय प्रभु के शरणों की सेवा^९ यह नौ वस्तु प्रभु से माग की जान से प्राप्ता सूत्र कहलाता है।

२ पांच अभिगम

म-चित्त दव्यमुज्झणम चित्तमणुज्झण मणंगत्त ।

इग माहि-उत्तरासगु अनली मिरामि निण दिट्ठे ।

भाष्यत्रयम्

भार्य—(१) सचित्त वस्तुओं को छोड़ देना (२) अचित्त वस्तु रखना (३) मन की एकाग्रता (४) एक अखण्ड दुपट्टा-खेस उत्तरासग रखना (५) चिनेश्वर परमात्मा के दर्शन होने के साथ अंजली पूजक मस्तक नमन कर प्रणाम करना, यह पाचों अभिगम चिनेश्वर प्रभु के चैत्य में प्रवेश समय आचरण में लाने के हैं। यह अभिगम श्रावक को दृष्टि में रखत हुए कहे हैं।

विशेष ऋद्धि वाले राजादि (१) सल्यार (२) छत्र (३) मोचडी (जूते) (४) मुकुट (५) चामर यह पाच राज्य चिह्न धाहर छोड़ चैत्य में प्रवेश करे।

३ दोदिमिस्थिति

श्री परमात्मा के दाहिनी (निमणी बाजू) तरफ पुरुष बायीं तरफ स्त्रिया रह कर प्रभु का दर्शन पूजन वदन करे ।

४ तीन प्रकार के अंगप्रह

देवगृह अगर छोटा हो तो ६ हाथ न्यून अथवा उल्टा साठ हाथ, शेष मध्य अंगप्रह रह श्री परमात्मा का चैत्यवदन, दर्शन करना चाहिये । प्रभु को अपना उच्छ्वासादि स्पर्श न कर इस प्रकार वर्तन करना चाहिए ।

५ तीन प्रकार का चैत्य वदन

(१) नमस्कार (अजलिबद्ध प्रणाम) द्वारा अर्घ्य (२) दण्ड (नमुत्पुण्ण आधिक) और स्तुतियुगल द्वारा मध्यम (३) पाच दण्ड चार स्तुति स्तवन और प्रणियाना द्वारा उल्टा चैत्यवदन होता है । अन्य आचार्य भगवतों का परमाना है कि एक नमुत्पुण्ण द्वारा अर्घ्य, दो या तीन द्वारा मध्यम और चार या पाच द्वारा उल्टा चैत्य वदन होता है ।

६ प्रणियात

दो हाथ, दो घुटने और मस्तक इन पाचों अंगों को भूमि स्पर्श करके जो प्रणियात किया जाता है । वह प्रणियात कहलाता है ।

नोट—(१) उत्तरासग रखने की विधि अंगपूजा तथा उल्टा चैत्यवदन करने वाले के लिये है फिर भी दूसरे पुरुष सिर पर पगडी या टोपी तथा उत्तरासग सहित ही प्रभु के पास जावे ।

(२) स्त्रीया अजली जोड़ मस्तक नमन करे लेकिन अजली साथ हाथ उंचे कर मस्तक से नहीं लगावे ।

८-९-१० द्वारों का घत्र (चार्ट)

सूत्र का नाम	सूत्र का गीणनाम	पर संख्या		गुरु अक्षर	नपु अक्षर	सर्वे अक्षर
		सप्तम	अष्टम			
१ नवकार	पञ्च मंगल श्रुत स्वयं	६	५	७	६१	६५
इच्छामि खमानमणो	प्रणिपात सूत्र वा छोभ सूत्र	०	०	३	२५	२५
हरिपावहिय (तस्मउत्तरा सहित)	प्रतिश्रमण श्रुत स्वयं	३२	५	२४	१७५	१९९
नमुत्युग	गङ्गान्व वा प्रणिपात दडक	३३	८	३३	२६४	२९७
अरिहूत भेइयाण (अप्रत्यय सहित)	चइय स्तव कायोत्सग दडक	४३	५	२९	२००	२२९
लोगस्स	नामस्तव	२८	२८	२५	२३२	२६०
पुस्खरवर	श्रुतस्तव	१६	१६	३४	१८२	२१६
सिद्धाण बुद्धाण	सिद्धस्तर	२०	२०	३१	१६७	१९८
जावति चेइयाई	अत्यवदन सूत्र	०	०	३	३२	३५
जावत वेविसाहू	मुनिवदन सूत्र	०	०	१	१७	३५
जययीप्रराय पहनी दो भाषा	प्रायना सूत्र	०	०	५	७१	७९
	प्रणिपातत्रिक				१४७	१५२

७ नमस्कार द्वार

एक से १-८ तक नमस्कार रूप रत्नोक्त यीनराग प्रभु के गुणों की प्रशंसा रूप गभीर और विशाल अर्थवाला नमस्कार कहलाता है।

८: १६४७ अक्षर

नमस्कार, गमासमण, इरियाद्विया, शक्रस्तय आदि दंडकों में और प्रणिधानों आदि में उक्त मिलाकर १६४७ अक्षर हैं जो चार्ट में दिये हैं।

९. १८१ पद

सगल इरियाद्विया, शक्रस्तयादि में नव, षत्तीम, ततीस त्यालीश, अष्टावीश सोला, धीम एक सौ इत्यासी पद हैं जो चार्ट में दिये हैं।

१०' ६७ सपदा (त्रिश्राम)

नमस्कार, इरियाद्विया, अरिहंतचंद्रयाण लोगरस्त, पुस्वरथर सिद्धाण बुद्धाण में आठ, आठ, नव, आठ, अष्टादश, सोला और बीस कुल सताणु सपदाएँ हैं (सपदा अथात् महापद अथवा त्रिश्राम।)

११ पाच दंडक

शक्रस्तय, चैत्यस्तय, नामस्तय, ध्रुनरात्र और मिद्धस्तय यह पाच दंडक हैं। इनमें २-१-२-२-५ इस भाँति १२ अधिकार हैं।

१२ पाच दंडक के संक्षेपदान में १२ अधिकार

पाच दंडक के १२ अधिकार — ^१नमुत्थुण-जेय (अ) अईया, ^२ सिद्धा, ^३ अरिहंत चंद्रयाण, ^४ लोगरस्त ^५ एजोअगर सव्यलोण, ^६ अरिहंतचंद्रयाण, ^७ पुस्वरथरणीयड्डे तमतिमिर, ^८ पडल विद्ध सिद्धाण, ^९ बुद्धाण जो ^{१०} देयाणप्रिदयो, ^{११} उक्थित सेलसिद्धरे, ^{१२}

षत्तारिञ्चदस द्योय,वेयायचगराण, १२ यह धारह अधिकार वे १२ प्रथम पद है। प्रथम अधिकार मे भावचिनकी^१ दूसर अधिकार म द्रव्यचिनकी^२, तीसरे अधिकार में एक चैत्य म स्थापना चिनकी^३ सर्व जिन प्रतिमाओं और चौथे अधिकार म नाम चिनकी वदना की गई है। पाच में अधिकार म तीन भुवन के स्थापना जिन की वदना की गई, छठे अधिकार में त्रिहरमान चिनेश्वरों को वदना की है। सातवें अधिकार में श्रुतज्ञान की वदना की है। आठवें अधिकार में सर्वमिदों की स्तुति है। नवमें अधिकार मे वर्तमान तीर्थ के अधिपति श्री धीरजिनेश्वर की स्तुति है, दशवें अधिकार में गिरनार की स्तुति है, ग्यारहवें अधिकार में अष्टापद आदि तीर्थों की स्तुति है और धारहवें अधिकार म सम्यगन्ष्टि देव का स्मरण है।

१३ ज्मन करने योग्य

चार वदनीय—

(१) श्री जिनस्वर भगवत, (२) मुनिमद्वाराच, (३) श्रुतज्ञान (४) सिद्धपरमात्मा ।

१४ स्मरण करने लायक

शासनदेय ।

१ भावचिन अर्थात् तीर्थद्वर नाम कर्म के विपाकोत्पत्त्याला केवल ज्ञानी तीर्थद्वर भगवत जब स्मोसरण म विराच कर देशना देते है। (२) द्रव्यचिन अर्थात् पूर्य के तीसरे भय मे निकोचिद तीर्थद्वर नामकर्म बाधा परन्तु अभी तक केवल ज्ञान पूर्यक भाव अरिहंत पन प्राप्त नही किया हो। मिद्वारस्थागने भी द्रव्य चिन कहलाते हैं। अर्थात् भाव जिन की पूर्य अत्रस्था तथा पीछ की अवस्था द्रव्य चिन कहलाता है। (३) चिनप्रतिमाएँ ।

१५ चार प्रकार के जिनेश्वर

नाम निष्णा-जिण नामा खणा निणपुण निणिंदपटिमाओ ।
दन्त्र-जिणा निण-नीना भात्र निष्णा समप्रसरणत्वा ॥

(भाण्यत्रयम्)

भात्रार्थ नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव चार प्रकार के श्री जिनेश्वर हैं ।

नाम से जिनेश्वरों के नाम, स्थापना में जिनेश्वरों की प्रतिमाएँ द्रव्य से जिनेश्वरों के चीत्र और भाव में समप्रसरणस्थ भगवन्त ।

१६ चार चूलिका स्तुति

अधिष्ठान गुरय = (मूलनाथन जिनेश्वर) चिनकी पहली, सर्व चिनकी दूसरी, ज्ञान की तीसरी तथा वेद्यात्रच करन वाले द्यो की उपयोग के लिये चौथी स्तुति है ।

१७ आठ निमित्त

पाप खपाने के लिये इरियादिय प्रतिक्रमण का, वंदन यत्तिया वगैरह ६ निमित्तों और शासनदेव के स्मरण के हेतु काउस्सगग करना इस भाति आठ निमित्त है ।

१८ कापोत्सर्ग करने के बारह कारण (हेतु-साधन)

"तस्म उत्तरीकरण" वगैरह चार 'श्रद्धा' वगैरह पाच और वेद्यात्रचव गराथ आदि तीन इस भाति बारह कारण साधन है ।

१९ बारह अथवा सोलह आगार

अन्तत्थ उससिण्ण से प्रारम्भ कर दिट्ठि संचालेहि तक बारह आगार इस प्रकार हैं —

(१) श्याम लेना, (२) श्वास छोड़ना, (३) सासी, (४) झीक, (५) जम्हाई आना (६) उर्ध्वमायु (ढकार आना), (७) पायुसरना (अधोवायु) (८) चक्र आना, (९) यमन (पितका उभरना), (१०) सूक्ष्म कावचप, (११) सूक्ष्म श्लेष्म संचार, (१२) सूक्ष्म दृष्टिसंचार (हिलाना) वारह आगार एक स्थान पर सड़े रहने के आश्रय (अपत्ता) से बड़े हैं। परन्तु काउससग्ग के नियत स्थान से हट कर दूसरे स्थान पर जाने पर भी काउससग्ग धक्का मिला जाने इसके चार आगार मुख्य हैं—(१) दीपक त्रिजली आदि का प्रकाश शरीर पर पड़ने से तीव्रों के शरीर स्पर्शादि से नारा होने से बचाने के लिये अप्रनाश स्थान पर जाना पड़े (२) स्थापना और अपने बीच चूहे आदि पंचेन्द्रिय जानवर आड़े निकलते हो, आन निवारण के लिये (३) पंचेन्द्रिय जीव की कोई बात करता हो तो अन्य स्थान हटना पड़े, (४) खुद को अथवा माधु आदि को सर्पादिक ने ठंश देने की समारना से दूसरे स्थान पर हटना पड़े।

२० कायोर्त्संग क १६ दोष

- (१) घोटक दोष—घोड़ा घोड़ी के सामान पर बाक या ऊँचे रखना।
- (२) लतादोष—लता की भाँति शरीर कपाना।
- (३) स्तम्भ कुड्यदोष—स्तम्भ या दीवार का सहारा लेना।
- (४) मालादोष—द्वार से मस्त्र लगा खड़े रहना।
- (५) उर्द्धिटादोष—आगे से या पीछे से दोनों पर मिला कर खर रहना।
- (६) निगदितदोष—पैड़ी पड़े हुए की भाँति दोनों पर पोल रखना या शामिल रख कर खड़े रहना।
- (७) शयरीदोष—भीलनी की भाँति दोनों हाथ गुदा भाग के सामान रख खड़े रहना।
- (८) खलिनदोष—घोड़े की लगाम की तरह चरनला खोवा का गुच्छा आगे और नड़ी पीछे रख पकड़ना।

- (९) यधूदोष—यधू की तरह मस्तक नीचे रख कर काउस्मग्ग में बंद रहना ।
- (१०) लङ्गुत्तरदोष—माधु के चोलपना नाभि से चार अंगुल नीचे ढाँचन से चार अंगुल ऊपर रखना चाहिए इससे ज्यादा नीचे अथवा ऊँचा रखना ।
- (११) स्तनदोष—स्त्री के माफिक छाती के ऊपर (हृदय) बपड़ा ढाँच कर काउस्मग्ग करना ।
- (१२) सयतीदोष—साध्वीजी के माफिक मस्तक के अतिरिक्त समस्त शरीर को घट्ट से ढकना ।
- (१३) अगुली मूदोष—नयकारादिक गिनते समय अगुलिया नेत्र कं भवें जैसे जैसे फिराना ।
- (१४) वायसदोष—कौशा भाति आस के होने इधर उधर घूमाना ।
- (१५) कपित्थदाप—कपडे मेले होने के भय से धोती की पटली के गोल दूचा कर दोनों पैरों के बीच रखना ।
- (१६) शिर कम्पदोष—शिर हिलाये करना ।
- (१७) मूत्रदोष—मूत्र की माफिक हँ हँ आगान करना ।
- (१८) यारुणीदोष—यारुणी शराब झँडेलते बुड्बुड आगान के समान बुड बुड करना ।
- (१९) वंदरदोष—वंदर की भाति ऊँचे नीचे होकर देखा करना ।

२१ काउस्मग्ग के समय का नाप

चैत्यवदन में इंद्रियाग्रहिय के काउस्मग्ग का प्रमाण पच्चीस श्वासोच्छ्वास समय चितना है और शेष को आठ है ।

२२ स्तन के गुण

रंभीर आशयमाला, मधुर शब्दों वाला महान् अर्थ वाला होना चाहिये । मिशेषतः पूजाचार्य रचित कहना ।

२३ सात चैत्यवदन

प्रतिक्रमण करने वाले गृहस्थ को भी सात अथवा पाच बार चैत्यवदन करना चाहिये । प्रतिक्रमण नहीं करने वाले को जघन्य से तीन इफा चैत्यवदन करना चाहिये ।

२४ दश मुरय आशातना

तनोल पाण भोयण, वाणह मेहुन सुअण निट्ठवणं ।

मुत्तु च्चार जुअ, वज्जे जिण-नाह जगईए ॥

मायार्थ श्री जिनेश्वर भगवत के मंदिर के अहाते (किले) में पान सुपारी खाना, पानी पीना, भोजन करना, जूते पहने रखना, मैथुन करना (स्त्री का संग करना), शयन करना, यूकना, पेशाब करना, टट्टी करना, जुग खेलना वर्जनीय है । यह दश आशातना पद्य है मध्यम ४२ और उत्कृष्ट ८४ है ।

चैत्य-वदन विधि

पिस जगह बैठकर चैत्य-वदन करना हो उस भूमि, को पहले नेत्रों से दैत चरबले अथवा उत्तरासण से भूमि प्रमाजन करते हुवे उत्तरासण धारण किये प्रमु समुन्व दृष्टि रखते हुवे एक खमासमण देकर आदेश पूर्वक इरियावहिय, तस्स उत्तरी, अन्नत्थ, कह एक लोगस्स का २५ उच्छवास प्रमाण काउरसग (चंद्रसुनिम्मलयरा तक) कर प्रगट लोगस्स कहना, फिर "इच्छामि खमासमणो वत्ति-जावणि क्काण निसीहिआण मत्थएण वदामि" इस तरह कहते तीन पंचांगी खमासमणा देकर वाया घुटना खड़ा रखकर उत्तरासण ढालकर दोनों हाथ जोड़ (योग मुद्रा कर) चैत्य-वदन करने का आदेश मागा जाता है । इच्छाकारेण-मदिसह भगवन् । चैत्य वदन क्हु । इच्छं कह कर चैत्य-वदन के नीचे के पद्य बोले—

मरुत्कृतशलवती-पुष्पगदतमेवो, दस्तिनिमित्तमानु वन्-
 श्चोपमान भवत्तनिधिषोत मरुगम्पत्तिहतु न भवतु मन्त
 य श्रेयसे शान्तिनाथ ॥ १ ॥

इस श्रुति के बाद नीचे का तित्यपराग अथवा कोद भी पूर्वा
 पार्श्वकृत चैत्यपदन कहता है—

जय चित्रामणि पार्श्वनाथ जय त्रिभुवन म्यामी ।
 अष्ट कर्म रिपु निर्त्तने, पत्रमी गति पामी ॥
 प्रभु नामे आनन्द कद, गुण सपति लहीर ।
 प्रभु नाम भव भयनणां, पानिद मत्र दर्शीर ॥
 ॐ ह्रीं यण नौडी र्गीण नर्पाण पादर नाम ।
 रिप अमृत धई पग्निमे, स्त्रीण अग्निन ठाम ॥

फिर जर्जिचि सूत्र कहना—

जर्जिचि नाम तिच, सग्गे पायालि माणुसे लोए जाइ
 निण रिचाइ, ताइ मव्वाइ वदामि ॥ १ ॥

अर्थ—स्वर्ग पाताला और मनुष्य लोक में जो कोद तीर्थ हो
 और जितने दिन तिच्य है, उन सब को मैं धरना करण है ।

फिर नमोत्थुण (शक्रस्तव) सूत्र बोलना—

नमोत्थुण अरिहताण भगवताण आइगराण तित्यपराण
 सय सचुद्धाण पुरिसुत्तमाण पुरिस सीहाण पुरिमरपु डरीआण

नोट—नमोत्थुण (शक्रस्तव) रायपसेणी सूत्र में सूर्याभद्रव,
 जीवाभिगसूत्र में विजयदेव, शातासूत्र में द्रोणदी ने जिस
 भाति किया ।

पुरिमरगधहृत्यीण लोमुत्तमाण लोम-नाहाण लोम हिआण
 लोमपईनाण लोम पञ्जोअगराण अमय दयाण चम्पु-दयाण मग्ग
 दयाण मरण-दयाण बोहि दयाण धम्म दयाण धम्म-देसयाण
 धम्म नायगाण धम्म-मारहीण धम्म-वर चाउरत-चक्रपट्टीण
 अप्पडिहय-वर नाण-दसण धराण पियट्ट छउमाण जिणाण जाण-
 याण तिनाण तारयाण जुद्धाण मोहयाण मुत्ताण मोअगाण
 सच्चन्नूण मव्वदरिसीण सिअमयल-मरुय मणत-मक्खयमव्वाराह-
 मपुणरावित्ति मिद्धि गड नाम धेय टाण सपत्ताण नमो
 निणाण जिअमयाण । जे अ अईआ सिद्धा, जे अ मपिस्मति-
 ऽणाणए ऋत्ते मपड अ वट्टमाणा, मव्वे तिविहण वडामि ।

अर्थ—नमस्कार हा अरिहन्त भगवत्तो को (१) जो श्रुतधर्म की
 आत्ति करने वाले हैं, चतुर्विध अमणसंघरूपा तीर्थ की स्थापना करने
 वाले हैं और स्वयं बोध प्राप्त किए हुए हैं । जो पुरुषों में ज्ञानादि गुणों
 से उत्तम हैं । सिंह-समान निभय हैं । उत्तम श्वेत-कमल के समान
 निर्लेप हैं तथा सात प्रकार की इतिया दूर करने में गंध हृत्ती सदृश
 प्रभाशाली हैं । जो लोक में उत्तम हैं, लोक के नाथ हैं, लोक के
 हितकारी हैं, लोक के प्रदीप हैं और लोक में प्रकाश करने वाले हैं ।

जो अभय देने वाले हैं श्रद्धाहृपी नेत्रों का दान करने वाले हैं,
 माग दिखाने वाले हैं शरण देने वाले हैं और बोधि धीच का लाभ
 करने वाले हैं ।

जो धम को समझने वाले हैं, धम की देगना देनेवाले हैं, धर्म
 के सन्च स्वामी हैं, धर्म रूपी रथ को चलाने में निष्णात मारधि हैं
 तथा चार गति का नाश करण, धर्मचक्र के प्रवर्तक चक्रवर्ती हैं । जो

नष्ट नहीं हो। ऐसे केवल ज्ञान ए। केवल दर्शन को धारण करने जाने हैं तथा अज्ञानता से रहित हैं। जो स्वयं जिन बने हुए हैं और दूसरों को भी जिन बनाने वाले हैं जो संसार समुद्र से पार हो गये हैं और दूसरों को भी पार कराते हैं। स्वयं बुद्ध हैं और दूसरों को बोध देने वाले हैं। जो मुक्त हैं और दूसरों को मुक्ति दिलाने वाले हैं।

जो सर्वज्ञ और सर्वशक्ति हैं तथा शिव, स्थिर, व्याधि और वेदना से रहित, मनस्त, अक्षय, अज्ञानाध और अपुराणिक अर्थात् लहो जाने के बाद संसार में वापिस आना नहीं पड़ता, जैसे सिद्धिगति नामक स्थान को प्राप्त किये हुए हैं। ऐसे सर्वभय शोक शिवा है जैसे तिनधर भगवत को नमस्कार करना है। और जो भूतकाल में सिद्ध हो गये हैं, जो भविष्यकाल में सिद्ध ज्ञान वाले हैं तथा जो वर्तमान काल में अरिहन्तरूप में विद्यमान हैं, उन सब का मन ध्यान और वापस ने में ध्यान करता है फिर मुत्तारुक्ति मुद्रा में जायति चेद्व्याध सूत्र कह कर एक समासमणा वेना—

जायति चेद्व्याध, उड्डे अ अड अ तिरिजलोए अ सव्याइ ताई धद, इह सतो तत्पमताः ॥

अर्थ ऊर्ध्वलोक, अधोलोक और मनुष्यलोक में निवने भी चेत्य जिनविषय हैं उन सब को यहा रहता हुआ यहा रहे हुएों को में ध्यान करता है।

इसके बाद-जायत वे वि साहू "तया नमोऽर्हंत सूत्र कहना जानत के वि साहू—भरहेरवय महाविदेहे सव्वेसि तेसि पणओ, तिनिहेण तिदड निरयाण ।

अर्थ—भरत-येरवत और महाविदेह क्षेत्र में स्थित जो कोई भी साधु, मन, ध्यान और वाया से पार प्रवृत्ति करते नहीं, कराते नहीं

करते हुए का अनुमोदन नहीं करते, उनको मैं नमन करता हूँ।

नमोऽर्हत्-भूत्र -नमोऽर्हत्-मिद्धा चार्योपाध्यायमर्ममापु

भ्यः ॥ ६ ॥

अर्थ—अरिहन्त सिद्ध आचार्य, उपाध्याय और सर्व साधुओं को नमस्कार हो। तदन्तर अरिहन्त परमात्मा का गुणकीर्तनादि रूप स्तवन कहना अथवा “उपसगाहर’ स्तोत्र कहना।

श्री पार्श्वनाथजी का स्तवन

अन्तरजामी सुण अलयेसर, महिसा त्रिनग तुम्हारो ।
 सामनीने आन्यो हूँ तीरे, जन्म मरण दुख वारो ।
 सेवक अरज करे छे रान, अमने शिष सुख आपो ॥ १ ॥
 सहु दोना मन वाद्धित पूरो, चिन्ता सहुनी चूरो ।
 एहबु विरुद छे रान समाक, केम राखो छो दूरो सेवक ॥ २ ॥
 सेवक बलबलनो देखी मनमा महेर न घरशो ।
 करुणा सागर किम कहेवाशो जो उपकार न करशो सेवक ॥ ३ ॥
 कटपटनु इवे धाम नहीं छे, प्रत्यक्ष दरसण दीजे ।
 धू आडे धीजु नहि साहित्र ! पट-पडया पनीजे सेवक ॥ ४ ॥
 श्री शंखेश्वर मण्डन साहित्र ! विनतडी अण्णारो ।
 कहे निनहर्ष दया करी मुनने, भयसागरथी छारो सेवक ॥ ५ ॥

फिर मुक्ताशुक्ति मुद्रा धारण रये दोना हाथ मस्तक पर रख
 “जयधीराराय सूत्र” ‘सेवणाध्यामवमखंडा’ तक कह दानो हाथ पूर्ण
 धत् नीचे उतारकर शेष सूत्र कहना

पणिहाण सुत्त (जयधीराराय सूत्र)

जय धीराराय ! जग-गुरु होउ मम तुह पमाबयो मय

मम निर्व्वेओ मग्गाणुमारिआ इहफलमिद्धी (१) लोग-निर्व्वद्ध
 चाओ गुरुरण पूआ परत्थकरण च गुह गुरु-जोगो तव्वपण
 सेरणा आभरमग्गडा (२) गग्गिज्जः जट पि नियण व्वण
 र्वायराय ! तुह ममये तहपि मम इज्ज सेवा-भवे भवे तुम्
 चल्णाण (३) दूमग्ग-ग्गओ कम्मग्गओ, समाहि मरण च बोहि
 लाभो थ । मपज्जउ मह एअ तुह नाह, पणाम करणेण (४)
 सर्व मद्गल माद्गल्य, सर्व कल्याण-कारण । प्रधान मर्य-
 धर्माण जैन जयति शासनम् (५) ।

अर्थ— हे धातराग प्रभो ! हे जगद्गुरो ! आपनी जय हो !
 हे भगवन् ! आपके सामर्थ्य से मुझ ससार के प्रति धैरान्य उत्पन्न हो,
 मोक्षमार्ग में चलने की शक्ति प्राप्त हो, और इष्टफल की सिद्धि हो
 (जिससे मैं धर्म का आराधन सरलता से कर सकूँ) । १ ।

हे प्रभो ! मुझे ऐसा सामर्थ्य प्राप्त हो कि जिससे मेरा मन लोक-
 निर्व्वद्ध कार्य के करने में प्रवृत्त न हो, धर्माचार्य तथा मातापितादि
 बड़े व्यक्तियों के प्रति परिपूर्ण आदर भाव का अनुभव करे और
 दूसरों का भला करने में तत्पर बने । और हे प्रभो ! मुझे मद्गुरु
 का योग मिले, तथा उनकी आज्ञानुसार चलने की शक्ति प्राप्त हो ।
 यह सब जद्दा तक मुझे ससार में परिभ्रमण करना पड़े वद्दा तक
 अन्वण्ड रीति से प्राप्त हो । २ ।

हे नाथ ! आपको प्रणाम करने से दुःख का नाश हो, कर्म का
 नाश हो, सम्यक्त्व की प्राप्ति हो और समाधि शक्तिपूर्वक मरण हो
 ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो । ४ ।

सर्व मद्गलों का मद्गलरूप, सर्व कल्याण का कारणरूप और
 सर्व धर्मा र्ग श्रेष्ठ एसा जैन शासन जय वो प्राप्त हो रहा है ।

फिर खड़े होकर "अरिहन्त चेइयाण" सूत्र कह "अत्रय" सूत्र कह कर एक नमस्कार का वाउस्सग्ग जिनमुद्रा में रह कर करना ।

अरिहन्त चेइयाण सूत्र

अरिहन्त चेइयाण करेमि वाउमग्ग ! वदण वत्तियाण पृअण वत्तियाए सक्कार वत्तियाण सम्माण वत्तियाए बोदिलाम वत्तियाए निरुवमग्ग वत्तियाण सद्दाए मेहाए पिईए धायण्ण थणुप्पेहाए वड्ढमाणीए ठामि वाउस्सग्ग ।

अर्थ—अर्ही प्रतिमाथा के आलम्बन से कायो-
इच्छा करता हू । वदन का निमित्त लेकर, पूजन का
सत्कार का निमित्त लेकर सम्मान का निमित्त लेकर
निमित्त लेकर तथा मोक्ष का निमित्त लेकर
बन्ती हुई प्रज्ञा से बन्ती हुई चित्त की स्वस्थता
से और बढ़ती हुई अनुप्रेक्षा से मैं कायोसा

अन्नत्थ सूत्र

अन्नत्थ ऊममिण्ण नीममिण्ण

जभाइएण, उड्ढएण, वायनिसग्गेण,
सुहमेहिं अगमचालेहिं, सुहमेहिं सेउएण
सचालेहिं, एमभाइएहिं आगारेहिं,
वाउस्सग्गो, जार अरिहताण भण्णएण
तार वाय ठाणेण भोणेण क्षाणेण

अर्थ—वास लेने से, वास छोड़ने से,
आने से, बहार आने से, अपाक

आने से, पित्त विकार के कारण मूर्च्छा आने से, सूक्ष्मश्लेष्म-सञ्चार होने से सूक्ष्म रीति से शरीर में काम तथा वायु का सञ्चार होने से, सूक्ष्म दृष्टिसञ्चार (नेत्र स्फुरण) आदि होने से, अग्नि स्पर्श, शरीर छेदन अथवा सम्मुख होना हुआ पञ्चेन्द्रियग्रह, चीर अथवा रात्रा के कारण और सर्प दश इन कारणों के उपस्थित होने पर जो काय व्यापार हो उसमें मेरा कायोत्सर्ग भग्न न हो अथवा विराधित न हो। ऐसे ज्ञान के साथ मूढ़ा रहकर वाणी-व्यापार सर्वथा बन्द करता हूँ तथा चित्त को ध्यान में जोड़ता हूँ। जबतक "नमो अरिहताय" पद बोल कर कायोत्सर्ग पूर्ण न करूँ, तब तक अपनी काया का सर्वथा त्याग करता हूँ।

फिर एक नमस्कार का काउत्सर्ग पूर्ण कर नमोऽर्हत् सूत्र कह थुई कहना फिर एक समासमणा देना।

नमोऽर्हत् सिद्धाचार्योपाध्याय-सर्वसाधुभ्य

थुई (स्तुति)

शंखेश्वर पार्थ पूजिष, नर भवनो लाहो लीजिष।

मनयाद्धित पूरण सुरतरु, जय वामा सुत अलवेसरु ॥

भाउ पूजा के बाद आरती मंगल दीप विधिपूर्वक उतारना।

जिनेन्द्रदेव की आशातना का त्याग — महान् दार्शनिक १४४४ प्रथो के रचयिता श्रीमद् हरिभद्रसूरिजी ने संशोध प्रकरण में कहा है कि "श्री जिनेन्द्रप्रभु की विधि पूर्वक की हुई पूजा स्वर्ग का फल तथा परंपरा से [संसार के पार पाने रूप] शिखुम्ब फल को भी देती है और अविधि से की हुई पूजा नि श्च चित्त जीवों को दुर्गति का फल देती है। श्री जिनेन्द्र प्रभु की आशातना का त्याग, सिद्धांत के

कि विधि का अनादर यहाँ नि श्च चित्त जानना।

प्रनुसार सामर्थ्य छुपाये बिना भक्ति, विधिमार्ग का अनुराग, अविधि का त्याग, इन चार अर्थ पूर्वक ही हुई पूजा बहुत फल देने वाली होती है।

श्री जिन भवन (चैत्य) के विषय में अवज्ञा^१ पूजा आदि में अनादर^२ तथा भोग^३ दुष्प्रणिधान^४ और अनुचित प्रवृत्ति^५ यह पाच मुख्य आशातनाएँ हैं।

(१) श्री जिनेन्द्रप्रभु के सामने पलाठी लगा कर बैठना, प्रभु को पीठ देकर बैठना, सीटी बजाना, पैर पसारना, खराब आसन से बैठना यह अवज्ञाआशातना (२) प्रभु पूजा के लिये जैसा तैसा वेप पहनना, जैसा मन में आवे उस प्रकार और किसी भी समय पूजा आदि शूय चित्त से करना, यह अनादर आशातना (३) जिन भवन में ताम्बूल आदि खाना, अशुचि करना इस प्रकार ज्ञानादि आचारों की आशातना करे वह भोग आशातना, जिन भवन में धर्जनीय है। (४) श्री जिन भवन में विषय राग द्वारा, द्वेष द्वारा, अवज्ञा मोह द्वारा मनोवृत्ति दुषित हो वह दुष्प्रणिधान आशातना कहलाती है। (५) चोर आदि परडना, रखसप्राम करना, रुदन करना, त्रिकथा करना, जानवर बाधना, पकाना इत्यादि गृहकार्य तथा गाली देना, वैद्यक करना, व्यापार इत्यादि कृत्य चैत्य में करना अनुचित वृत्ति आशातना है, उसका त्याग करना। धमसप्रह ग्रन्थ में सत्या की अपेक्षा जघन्य दश, मध्यम चालास और उच्छ्रुत चौरासी आशातना घतलाइ हैं।

चैत्य सम्यगी नान्य इगु-आशातना

श्री जिन चैत्य में (१) ताम्बूल खाना (२) पानी पीना (३) भोजन करना (४) जूते पहने रुदन (५) श्री स्वेन करना (६) राखन करना (७) धूकना या लेप्प फेंकना (८) पैछाड करना (९) मत्त त्याग करना (१०) दुष्प्रवृत्ति करना। यह इगु आशातना अवज्ञा आशातना है।

चैन्य सम्बन्धी मयम चालीम आशातना

श्री जिन मंदिर में (१) पेशाव करना (२) मल त्याग करना (३) सुरा आदि पीना (४) पानी पीना (५) भोजन करना (६) शयन करना (७) स्त्री सेवन करना (८) ताम्बूल खाना (९) शूक श्लेष्म फेंकना (१०) जुआ मलना (११) शरीर कपडा आदि में से जू तथा माकड़ आदि निकालना (१२) रात्र कथादि विकर्षण कइना (१३) पलाठी मार कर बैठना (१४) लम्बे पैर पसारना (१५) परस्पर विवाद कलह करना (१६) मशकरी करना (१७) मत्सर करना (१८) जिन भवन के सिंहासन, पाट, पाटला आदि का उपयोग स्वयं करना (१९) मस्तर के वेश सजाना आदि शरीर की रोभा करना (२०) छत्र धारण करना (२१) हाथ में शस्त्र रखना (२२) शिर पर मुकुट धारण करना (२३) स्वयं के चामर कराना (२४) ऋणी को मंदिर में पकड़ना (२५) युवती स्त्रियों के साथ भिन्न पूर्वक हसना बोलना (२६) भाड के समान हलके मनुष्य की भांति खराब वर्तन करना (२७) मुख कोप बांध बिना पूजन करना (२८) मलिन शरीर (बिना नहाये) तथा अशुद्ध वस्त्र से पूजन करना (२९) मन को पूजा में एकाग्र नहीं रखना (चलाय मान करना) (३०) पुण्य आदि मरिचक रसु शरीर पर पड़ने रखना (३१) पहने हुए अचिन्त आभरण आदि मंदिर में जाते पहले या बहा गये पीछे निकाल देना [पहने हुए अर्थात्कारादिमहित जाये] (३२) उत्तरासग जुडा हुआ या फटा हुआ रखना या थिलथिल नहीं रखना (३३) श्री जिनप्रतिमा के दर्शन होत ही गौनां हाथ जोड़ कर प्रणाम नहीं करना (३४) श्री जिनेश्वर के दर्शन करत हुए भी पूजा नहीं करना अथवा पूजा करने की सन्पत्ति सामग्री की अनुकूलता होत हुए भी पूजा नहीं करना (३५) सराव पुष्प चंदन, केसर आदि से पूजा करना (३६) पूजादि काय अंगदर पूर्वक करना (३७) श्री जिनेश्वरदेव के प्रियियों को (सामर्थ्य होते) निंदादि करते नहीं रोचना

(३२) चैत्य द्रव्य का नारा होता हो और स्वयं म सामर्थ्य थीर अधिभार हो फिर भी उसकी उपेक्षा करना (३६) जुते पहने रखना (४०) द्रव्य पूजा शेष होते हुए पहले ही चैत्य बंदनादि भाग पूजा करना । इन चालीस मध्यम आशाननाया का वर्णन मईपि हरिभद्रसू रिज्ञीने मशोधप्रवरण देवाधिदेवाधिभार में दिया है । निन चैत्य में इनका त्याग करना चाहिये ।

श्री जिन मंदिर की आशाननाय मात्र गृहस्थ के लिये ही वर्ण नाय है ंसा नहीं परंतु साधु के लिये भी ये आशाननायें वर्णनीय ह —

“ग्रामायणा उ मरभमण-कारण इय निभापि उ जणो ।
मलमलिणु (ण) त्तिन जिण-मदिरामि निरमति इड समओ ।

भावार्थ—जिनेश्वर की (चैत्य में होती) आशाननायें ससार भ्रमण कराने वाला जान कर साधु अपने शरीर, वस्त्रादि को मैल से मलिन होन क कारण निन मन्दिर में (चैत्यबंदनादि प्रयोजन पूर्ण हाने से ब्यादा) रहते नहीं । ऐसा आगम मं वतलाया है ।

॥ इति ॥

:: गुरु-पदनविधि ::

गुरु वंदन का महत्त्व—गुरुवन्दन भाष्य में कहा है कि—
त्रिण्योत्पार माणस्म भवणा पृथणा गुरुनणस्म ।
तित्थयराय य आणा, सुअधम्मारादणात्तिरिया ॥

अर्थ—गुरु को वंदन करने से अनुक्रम से त्रिनयापचार, मान का सदन, गुरु-वन की पूजा, तीर्थंकरों की आशा का पानन, शुद्धधर्म को आराधना तथा मुक्ति की प्राप्ति होती है ।

गुरु वंदन तीन तीन प्रकार के हैं —

“गुरुपदणमह तिपिह, तं फिट्ठापल्लोम २ वारसापराड ।

सिरनमणाइसु पडम, पुत्तगमाममणदुगि वीऊ ॥ १ ॥

भाषार्थ—गुरु वंदन तीन प्रकार का कहलाता है । एक फिट्टा वंदन, दूसरा छो (थो) भवदन तीसरा द्वादशावरावंदन, उनमें पहला मस्तक आदि नमन करने से, दूसरा (शरीर के पाचो अंग) पूर्ण दो खमासमण देने से, तीसरा दो वंदना (द्वादशा वर्त) से होता है ।

(१) फिट्टावंदन—सद्य में परस्पर करना, अर्थात् साधु साधु को परस्पर, साध्वी साध्वी को परस्पर, श्रावक सर्व साधु साध्वी तथा श्रावक श्रावक परस्पर और श्राविका श्राविका परस्पर, श्राविका साधु आदि चारों को (और साध्वी साधु को तथा साध्वी को) फिट्टावंदन करे ।

(२) थोभवदन—साधु बड़े साधु को, साध्वी बड़ी साध्वी को तथा लघु पर्याय वाले साधु को भी तथा श्रावक साधु को और श्राविका साधु साध्वी को पचाग वंदन करे । इस प्रकार खमासमणापूर्वक गुरुवंदन साधु साध्वी को किया जाता है ।

(३) द्वादशावरावदन—यह वंदन साधु साध्वी, श्रावक श्राविका द्वारा मात्र पदस्थों को ही किया जाता है । यह भी अपदस्थ साधु सर्व पदस्थों को तथा पदस्थ बड़े पदस्थों को करे ।

:: गुरु वदन ::

मस्तक, दो हाथ, दोनों घुटने इन पाचों अङ्गों से भूमि स्पर्श करते हुए बोलना—

इच्छामि समासमणो ! वदिठ, जागणिञ्जाए निसीहिआए मत्थएण वदामि ॥

फिर खड़े होकर गुरु की सुलशाता, पृच्छा कर (दो बार खमा० दव)

इच्छामार ! सुह-राई ? (सुह देणमि ?) सुख तप ? शरीर-निरामाघ ? सुखसनम-यात्रा निर्वहो छो जी ? स्वामि शाता है जी ! मात पानी का लाम दनानी ।

फिर भूमि पर मस्तक टैककर भायें हाथ मं मूढपत्ती से अगर दुपट्टे से मुन्व आच्छादित करके तथा दाया हाथ गुरु के सामन रखकर अधान् हाथ को भूमि पर स्थापित करके बोले—

इच्छाकारेण सदिसह भगवन् ! थन्धुटिट्ठो मि थन्धितर-देणमिय (राइअ) एामेउ ।

इच्छ, एामेमि देणमिय (राइथ) ज किंचि अपत्तिअ, पर पच्चिअ, मत्ते, पाणे, पिणए, वेयाअच्चे, आलाने, सलाने, उच्चा सणे, समासणे, अतरभामए उअरिभासाए । ज किंचि मज्झ पिणप परिहीण सुहुम वा नायर वा तुमे जाणह, अह न जाणामि, तस्स मिच्छामि दुक्कड ॥

बदन के ३२ दोष

- १ अनादृतदोष—बिना उत्सुक चित्त बदन करना ।
- २ स्तब्धदोष—आठ मर्दा के घण में होकर बदन करना ।
- ३ परिद्धदोष—अधूरी क्रिया-बदन छोड़कर चले जाना ।
- ४ परिपिडितदोष—सबको सम्मिलित बदन करना । सूत्र के उच्चारण म अक्षर, प्रद और सपदा को यथास्थान अटके बिना अस्पष्ट सम्मिलित उच्चारण करना ।
- ५ टोलगतिदोष—आगे पीछे चूटते २ बन्दा करना ।
- ६ अङ्गुरादोष—अपने आँचे या चरबला को दानों हाथ में अङ्गुरा की तरह पकड़ कर बदन करना ।
- ७ कच्छ परिमितदोष—बिना कारण बदन करते आगे पीछे घिसरना ।
- ८ मत्स्योद्धतनदोष—मत्स्य पानी म एकदम नीचे जाता है और उपर आता है, एकदम पीछे फिरता है, इस प्रकार बदन करना ।
- ९ मन प्रदुष्टदोष—मन म प्रद्वेष रखकर बदन करना ।
- १० वेदिकावद्धदोष—बदन म आर्त दत्त समय होना हाथ अथवा ढीचण त्रिविपूरक नहीं रखना ।
- ११ भयदोष—'बदन नहीं करूँगा तो सब, समुदाय से दूर करेंगे' आदि भय से बदन करना ।
- १२ भवतदोष—बदनादि सेवा करूँगा, इससे गुरु भी मेरी सेवा करेगा ।
- १३ मैत्रीदोष—'प्राचायादि को बदन करने से मैत्री होगी ।

- १४ गौरवदोष—मैं गुरु उद्वेग विधि में कुशल हूँ। दूसरों को बतलाने के लिये विधिपूर्वक आगत आदि विधि साचवे।
- १५ करणदोष—ज्ञानादि मित्राय वस्त्र, पात्र आदि वस्तु प्राप्त करने के लिये उत्पन्न करना।
- १६ स्तेनदोष—स्तेन अर्थात् चोर की भाँति दूसरा नहीं देग्ये इस तरह उद्वेग करना।
- १७ प्रत्यनीकदोष—गुरु व्यग्र चित्तवाले, अचानक बैठे हों प्रमादग्रह हों आहार निहार करते हों अथवा करने की इच्छावाले हों। इस समय पर उद्वेग करना।
- १८ स्पृष्टदोष—गुरु रोगग्रस्त हों तब उद्वेग करना अथवा किसी कारण रुद्ध श्री क्रोध हुआ हो उस समय क्रोध युक्त उद्वेग करना।
- १९ तजनादोष—'काष्ठ पुतली क तरह तुम को उद्वेग करने से तुम रुसा नहीं होत हो या नहीं करने से नाराज नहीं होत हो तुमको उद्वेग करने से क्या विज्ञेय है ? एतत्तजना उद्वेग करना।
- २० शठदोष—यह भक्त है उस तरह लोगों से निद्रास पैदा करने के लिये माया से उद्वेग करना।
- २१ हीलितदोष—अज्ञानपूर्वक उद्वेग करना।
- २२ विपरीत कुचिन्तनदोष—आधा उद्वेग कर बीच में दृशकथादि करना।
- २३ दृष्टान्तदोष—बहुत साध उद्वेग की आज्ञा में उद्वेग न करना। अथवा अचेरा हो नव उद्वेग न करना।
- २४ शृंगदोष—उद्वेग में 'अहो काय' आदि बोनकर भावतें धरते दोनों हथेली ललाट के मध्य में नहीं लगाकर ललाट से अन्य जगह लगाता।

- २५ करदोष—घंदन रूपी कर अरिहत द्वारा परमाया हुआ मान कर अवरय चुकाना ऐसा मान कर घंदन करना ।
- २६ मुक्तदोष—घंदन रूपी कर से कथ छुटकारा मिलेगा ऐसा मान कर घंदन करना ।
- २७ आश्रिण्टानारिलिप्ट दोष—घंदन में जो आवर्त लेने के होते हैं, हममें रनोदरण और मस्तक की स्पश न करे । "युनाधिक करें ।
- २८ न्यूनदोष—घंदनसूत्र के अक्षरों का पूर्ण उच्चारण न करना ।
- २९ उत्तरचूदादोष—घंदन पूण क्रिये पीछे मोटी आयाज से "मत्यण्ण यदामि" ज्यादा बोलना ।
- ३० मृकदोष—घंदन सूत्र के अक्षर मन में बोलना ।
- ३१ ढढ्दरदोष—सूत्र का उच्चार मोटी आयाज से करना ।
- ३२ चुडलिदोष—ओधे को किनारे से पकड़ कर घुमाते हुए घंदन करना ।

गुरु महाराज को घंदन करते यह ३२ दोषों का अवरय त्याग करना चाहिये ।



गुरु प्रत्ये ३३ आशातना

- (१) गुरु के आगे सरानर चलना ।
- (२) " वाजू में चलना ।
- (३) " पीछे थिलकुल नचणीक चलना ।
- (४) " आगे खड़े रहना ।
- (५) " वाजू में खड़े रहना ।
- (६) " पीछे निरट खड़े रहना ।

- (७) गुरु के आगे बैठना ।
 (८) ,, बानू म बैठना ।
 (९) ,, पादों पिम्पट बैठना ।
 (१०) गुरु क पदल स्थंडिल भूमि (बडीनीति) साथ जाने पर पहले हाथ पैर की शुद्धि करे । आहारादि समय गुरु के पहले स्वयं मुख शुद्धि करना ।
 (११) बाहर से गुरु के साथ आते हुये पहले गमणागमने की आलोचना करनी ।
 (१२) गुरु रात्रि को पृच्छे-कौन निद्रा लेता है ? कौन जागता है ? लेकिन उत्तर नही देना ।
 (१३) किसी आये हुए गृहस्थादिक को गुरु के बुलाने के पूर्व खुद धातचित करना ।
 (१४) गोचरी लाकर प्रथम दूसरे साधु के आगे आलोचना करे बादमे गुरु के आगे आलोचना कर ।
 (१५) लाई हुई गोचरी गुरु को खिलाने के पहले दूसरे साधु को दिखाना ।
 (१६) लाई हुई गोचरी पाना काम में लाने के लिये गुरु के पहले दूसरे साधु को निमंत्रण करना ।
 (१७) आहार लाकर गुरु की आज्ञा बिना स्वयं दूसरे साधु को मनमानी गोचरी देवे ।
 (१८) आहार थोड़ासा गुरु को दकर सिन्ध और मधुर आहार खुद काम में लेवे ।
 (१९) गुरु के बुलाने पर नही बोलना । (दिन के समय)
 (२०) गुरु के साथ करुण स्वर से बोलना ।

- (२१) गुरु के बुलाने पर आसन पर बैठे बैठे प्रत्युत्तर देना ।
- (२२) गुरु के बुलाने पर "क्या है" ? कहना ।
- (२३) गुरु को 'पूज्य' आदि शब्दों से संबोधित करने के बदले 'तू' आदि बोलना ।
- (२४) गुरु शिष्य को कहे 'बीमार साधु की वैयास्य क्यों नहीं करते?' तो जवाब में कहना— 'तुम गुद क्यों नहीं कर लेते ?'
- (२५) गुरु कथा कहते हों जब "अहो आपने यह वचन उत्तम कहा" इत्यादि प्रशंसा नहीं करना ।
- (२६) गुरु धर्म कथा कहते हों तब इसका अर्थ इस प्रकार नहीं है' इत्यादि कहना ।
- (२७) गुरु धर्मकथा कहते हों तब 'यह कथा मैं पीछे से अच्छे ढंग से सुनाऊंगा' इस तरह कथा भंग करना ।
- (२८) गुरु धर्मकथा कहते हों उस वक्त कहना "अब यह कथा छोड़ दो"
- (२९) गुरु ने कथा कहने के बाद अभी पर्यदा उठी नहीं हो अपनी चतुराई दिखाना आदि ।
- (३०) गुरु की शय्या नीर सधारा को पैर लगाना आदि ।
- (३१) गुरु के शय्या तथा सधारा पर बैठना सड़े रहना ।
- (३२) गुरु से अधिक उंचे आसन पर बैठना ।
- (३३) गुरु से आगे या धरातर आसन पर बैठना ।

:: देवद्रव्यादि की व्यवस्था ::

शास्त्रीय मार्गदर्शन

चैत्यकार्य का अधिकारी—

“अहिगारी य गिहस्थो, सुहसयणो त्रिन्तम जुओ कुलनी ।

अरबुहो धिइरलिओ, मइम तह धम्मरागी य ॥ ५ ॥

गुरु पूजा करणरइ, सुस्सुसाइ गुणरागओ चेय ।

णायाहिगयविहा णस्स धणियमाणापहाणो य ॥ ६ ॥

—द्रव्यसप्ततिका

भाषा—(१) अनुकूल कुटुम्बवाला, (२) धनवान् अर्थात्
-यायोपाजित धनवाला (-) सत्कार करने योग्य, (४) कुलगान्
(५) बदर दान्ती, (६) धैर्यरत्न युक्त (७) शास्त्र की आज्ञा के आधीन
रहने वाला आगमपरतज, (८) धर्मरागी (९) गुरुसेवा में तत्पर (१०)
शुश्रूषादि बुद्धि के आठ गुणों से युक्त अर्थात् त्रिवकी (११) चैत्य
द्रव्यादि-की वृद्धि की विधि का जानने वाला, प्रस्तुत विषय के शास्त्रों
के विधानों का ज्ञाता, (१२) बुद्धिमान। ऐसा गुणयुक्त गृहस्थ चैत्यकार्य
का अधिकारी (व्यवस्थापक) हो सकता है।

चैत्य कार्य के विशेष अधिकारी—

मग्गानुसारिपाय, सम्मदिट्ठी तहेय अणुविरई ।

पएऽहिगारिणो इह, त्रिसेसओ धम्मसध्वमि ॥ ७ ॥

—द्रव्यसप्ततिका

भाषा—मगानुसारी, अविरत सम्यग् दृष्टि और देशविरति
यह धर्मशास्त्र के अनुसार प्राय देवादिद्रव्य की वृद्धि के विशिष्ट
अधिकारी जानना ।

देवद्रव्य [निर्मदिर व निनयिम्बद्रय]—भक्ति आदि विशिष्ट

निश्चयवाली बुद्धि द्वारा जिस काल में धन धायादिक जो यस्तु दवा-

दिक के हेतु निर्णयपूर्वक धारी गई अथवा समर्पित की गई वह देव द्रव्य ।

(क) जिनप्रिम्ब की उपासना के लिये किसी भी व्यक्ति द्वारा भक्ति से समर्पित द्रव्य जिन प्रिम्ब द्रव्य है । यह द्रव्य जिन प्रतिमा के रक्षा कार्य, नवीन प्रिम्ब भराने, प्रिम्ब के लेप आगी आदि में व्यय किया जा सकता है । यह द्रव्य जिन प्रिम्ब के कार्य के अतिरिक्त अन्य किसी कार्य में खर्च नहीं किया जा सकता है ।

(ख) प्रभु के पांच कल्याणकों के निमित्त भक्ति पूर्वक बोला गया द्रव्यादि देव द्रव्य है । प्रभु पूजा, आरती, मंगल दीपन, अंजन शलाका प्रतिष्ठा महोत्सव उपधान की प्रवेशशुभक, उपधान की माला, तीर्थमाला आदि के रूप में बोला गया द्रव्य भी देवद्रव्य है । इस द्रव्य का उपयोग प्राचीन चैत्या के पीछोंद्वारा नूतन चिनगूह के निर्माण, जिन चैत्य के रक्षा कार्य उगैरह कार्यों में किया जा सकता है । देवद्रव्य में से महापूजा (शान्तिस्नान आदि) हो सकती है श्राद्धविधि में कहा है । श्रावण को घने वहा तन अपने निजि द्रव्य से श्री चिनेश्वर भगवान् की पूजा भक्ति करनी चाहिये । जिस स्थान पर श्रावणों का घर नहीं है, तीर्थ भूमि है या स्थानिक सघ प्रभु पूजा में (उपासना) स्पर्ध करने की शक्तिवाला नहीं है उस जगह पर रहे हुए जिन चैत्य की पूजा देव द्रव्य से भी हो सकती है । देव द्रव्य श्रावणों को निजी किसी भी उपयोग में लाने का शास्त्रों में निषेध किया है । श्री श्राद्धदिन कृत्य सूत्र में कहा है कि "जो प्राणी देव द्रव्य का या देव के उपकरणादिक का विनाश करता है । भक्षण करता है अथवा अन्य द्वारा भक्षण होत देख उसको उपेक्षा करता है, अंगउद्धार देत मना नहीं करता है वह प्राणि बुद्धिहीन होता है और पाप कर्म से लेपायमान होता है" अन्य धर्म शास्त्र में भी बतलाया है कि देवद्रव्य भक्षण करने वाला जीव अनन्त ससारी होता है । श्री श्राद्धदिन कृत्य में आगे कहा है कि "जो देवद्रव्य की रक्षा करता है वह परिलससारी-अल्पससारी होता है ।

साधारण द्रव्य — सातों क्षेत्र के लिए भेंट की गई एक रकम यह साधारण द्रव्य है। लेकिन आन कल शुभ कार्य मात्र के लिए उपयोग करने के हेतु एकत्रित किया गया द्रव्य साधारण द्रव्य कहा जाता है। साधारण खाते में समर्पित किये द्रव्य का सर्व धार्मिक कार्यों में उपयोग हो सकता है। सात क्षेत्रों के साधारण का उपयोग सघ की आज्ञा से सात क्षेत्रों (जिन विन्ध्य निन भवन ज्ञान, माधु, माध्री, श्रावक श्राविना) के लिए उपयोग किया जा सकता है। लेकिन अनुज्ञा में नहीं दिया जा सकता है। साधारण द्रव्य श्रावक को भा श्री सघ की बिना आज्ञा काम में लाना नहीं कल्पता है।

ज्ञान द्रव्य — आगम धर्मशास्त्र की उपासना के हेतु समर्पित किया द्रव्य, प्रतिव्रमण सूत्रों का बोली कल्पसूत्र की भक्ति निमित्त बोला गया द्रव्य, पुस्तक पूजन द्रव्य ज्ञान द्रव्य है। यह द्रव्य माधु माध्री के पठन पाठन में अनेन पंडित को वेदनादि दान में ज्ञान भंडार के लिये सूत्रादिक स्वरादने में उपयोग किया जा सकता है। यह द्रव्य धार्मिक सूत्र (आगम) शास्त्र लिखाने, छपवाने में खर्च किया जा सकता है। इस द्रव्य का उपयोग व्यावहारिक शिक्षा में नहीं हो सकता है। यह द्रव्य भी देव द्रव्य की भांति श्रावकों को नहीं कल्पता है अर्थात् श्रावकों के उपयोग में नहीं आ सकता है। ज्ञान शास्त्र का अर्थ जैन शास्त्रों में सम्यग् ज्ञान बताया गया है।

१. द्रव्य — गुरु की भक्ति (पूजा) के समय समर्पित (अर्पण) हुआ द्रव्य गुरु द्रव्य है। यह द्रव्य चैत्यों के तीर्णद्वार तथा नूतन चैत्य निर्माण में उपयोग में आता है। श्री कुमार पाल राणा प्रतिदिन एक सौ आठ स्वर्ण कमलों में श्री इमाचाय की पूजा किया करते थे।

जीव दया द्रव्य — श्रावकों द्वारा निराधार पशु, पक्षी, (रोचर, भूचर आदि) के जीवन संरक्षण के लिये इकट्ठा या अर्पण किया हुआ।

द्रव्य है। यह द्रव्य पशु पक्षी के अतिरिक्त अन्य मनुष्य के काम में नहीं आसता है।

देव द्रव्य की वृद्धि करने वाला—श्रीमद् हरिमद्रसूरि म० ने संप्रोध प्रकरण में देवद्रव्यादि के बारे में उल्लेख किया है। चिन प्रवचन की वृद्धि करने वाला और ज्ञान दर्शनादि गुणों का प्रभावक तथा देव द्रव्य का रक्षण करने वाला जीव परत्तिससारी (अल्पससारी) होता है।

देवद्रव्य की उपेक्षा—चिन प्रवचन की वृद्धि करने वाला और ज्ञान दर्शनादि गुणों का प्रभावक होता हुआ भी जो देवद्रव्य की उपेक्षा—अनाश्र करने वाला हो वह जीव दुर्लभ बोधि होता है। चिन प्रवचन की वृद्धि करने वाला और ज्ञान दर्शनादि गुणों का प्रभावक होने पर भी जो देवद्रव्य का भक्षण करने वाला हो, वह जीव अनन ससारी होता है। चैत्य द्रव्य और साधारण द्रव्य को भी जो विमूढ मनवाला जीव भक्षण करता है वह तिर्यचगति में भ्रमण करता है और सदा अज्ञान रहता है।

आज्ञा विरुद्ध देव द्रव्य की वृद्धि करने वाला—अज्ञानी तथा चिनेश्वर की आज्ञा के विरुद्ध देव द्रव्य की वृद्धि करने वाला जीव मोह द्वारा मूढ़ होकर भय समुद्र में डूबता है।

॥ इति ॥



श्री जिनेन्द्र-पूजा में आवश्यक सावधानी

१ पूजा करने के लिये स्नान छाने हुए अल्प पानी में कर ।

२ परमात्मा की प्रतिमा में अपना सम्बन्ध न लगाय ।

गम द्वार में मुख्य कोण साधकर प्रवेश कर ।

३ बहुत भक्ति भाव में विधिपूर्वक अभिषेक करें ।

४ बाल कूचा (स्वयम्भूची) का उपयोग न कर । गोठे यन्त्र से प्रतिमा की पर में केसर च्छारें । चूहा च्छमर रह गया हो तो उहा बाल कूची का उम टंग से उपयोग करें, कि जैसे अपनी आत्मा से मेल कर करते हैं ।

अभिषेक पूरा होते ही परमात्मा की प्रतिमा धंगलूगन में स्थान दे दें ।

५ ताव के सगीया का उपयोग न कर ।

६ पुरुष भगवान के दाहिनी ओर खड़े रहकर दर्शन पूजा कर ।

७ स्त्री भगवान के बायी ओर खड़े रहकर दर्शन पूजा करें ।

नाट —परमात्मा की आज्ञानता करने वाला आत्मा अनन्त दुःख पाती है । बाल कूची चोर जोर से चामने में भगवन्त के नाक आन्व काने बगैरह अङ्ग घिस जाते हैं । नम लिये बाल-कूची का तो उपयोग ही अति धल्प करना चाहिये ।

